

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176289

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H/420

Call No. D815

Accession No. G.H. 3

Author दयाशंकर-दुबे .

Title साहित्य-रोमान .

This book should be returned on or before the date
last marked below.

साहित्य-सोपान,

द्वितीय भाग

वर्नाक्यूलर स्कूलों की छठवीं कक्षा के लिए

सम्पादक

पं० दयाशंकर दुवे, एम० ए०, एल०-एल० बी०
अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

तृतीय

पं० गङ्गानारायण द्विवेदी
अध्यापक, कान्यकुब्ज इंटरमिडियट कालेज
लखनऊ

प्रकाशक

रामनारायण लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

[चर्चवार ३०००]

१९३३

मूल्य ॥१॥

1st Edition 1930. Reprinted 1931, 1932 and 1933

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad

प्राक्थन

प्रस्तुत पुस्तकों के संकलन में; शिक्षा-विभाग-द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रम पर विशेष ध्यान दिया गया है। भाषा और विषय की सरलता तथा क्लृप्ता का ध्यान रख कर ही पाठों का क्रम निश्चित किया गया है। ऐसे पाठों का चुनाव किया गया है जो विद्यार्थियों की नैतिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों का विकास करते हुए उनमें साहित्यामृत पान की अभिरुचि और लगन उत्पन्न कर दें। शुष्क विषयों के पाठ भी ऐसी मनोरञ्जक भाषा में दिये गये हैं कि विद्यार्थी उन्हें चाव से पढ़ कर विषय के ज्ञान को हृदयङ्गम कर लें।

हिन्दी-संसार में जो जो कवि तथा लेखक अपनी अपनी भाषा-शैली के आचार्य माने जाते हैं, तथा जिनकी कृतियाँ हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक खास देदोप्यमान अध्याय हैं, उन सब कवियों की कृतियाँ यथासाध्य इन पुस्तकों में देने की चेष्टा की गई है। ये नमूने ऐसे हैं, कि जिनका पढ़ कर विद्यार्थियों के हृदय में उन महाकवियों और सिद्धहस्त लेखकों के ग्रंथों के पढ़ने की अभिरुचि स्वतः उत्पन्न होगी। विषय की उपयोगिता, तथा विद्यार्थियों का आगामो जीवन आधुनिक साहित्य से ही अधिक सम्बन्धित रहता है, इस विचार को ध्यान में रख कर नवीन कवि और लेखकों की कृतियाँ भी इस संग्रह में सन्निवेशित की गई हैं।

प्रत्येक पाठ के अन्त में थोड़े थोड़े 'अभ्यास' ऐसे दिये गए हैं कि यदि विद्यार्थीगण मनायेग-पूर्वक इन अभ्यासों को करेंगे

तो पाठ का आशय समझने के अतिरिक्त उनमें प्रबन्ध-रचना, व्याकरण के प्रयोग और शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनके मूल रूप ज्ञात करने की शक्ति की वृद्धि अवश्य होगी।

प्रत्येक पुस्तक के अन्त में दो दो परिशिष्ट दिये गये हैं जिनमें से एक तो “ पाठसहायक बातों ” का है, जिसमें पाठों में आये हुए कठिन शब्दों के अर्थ, व्युत्पत्ति, कहावतों तथा मुहावरों के भावार्थ और अन्तर्कथायें आदि पाठसहायक बातों का समावेश है जिनकी सहायता से विद्यार्थी क्लिष्ट पाठों के समझने में पूर्ण समर्थ होंगे।

दूसरे परिशिष्ट में उन कवियों तथा लेखकों के संक्षिप्त परिचय हैं जिनकी कृतियाँ इन पुस्तकों में दी गई हैं।

किन्तु इन सब विशेषताओं और परिश्रम का फल तभी सफल हो सकता है जब कि हमारे अध्यापकबन्धु भी अपना कर्तव्य उत्साह और लगन के साथ सम्पादन करें। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर हम साहित्य-शिक्षा के कुछ मोटे मोटे नियम नीचे लिखते हैं कि जो साहित्य-शिक्षा देने में उनकी यथेष्ट सहायता अवश्य करेंगे।

(१) अध्यापकों के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह जिस विषय का ज्ञानाभूत सरल और सुकुमार बच्चों को पिलाना चाहते हैं, पहले वह स्वयम् उसको पीकर मत्त हो जावें; तब विद्यार्थियों को भी उसी प्रकार मत्त बनाने की चेष्टा करें। अर्थात् जो पाठ विद्यार्थियों को पढ़ाना है, उसकी बारीकियाँ, उसकी विशेषतायें पहले स्वयम् विचार लें और यह भी सोच लें कि इन बारीकियों और विशेषताओं को हम विद्यार्थियों के कोमल हृदय पटल पर किस प्रकार अंकित करेंगे, तब पाठ पढ़ाना आरम्भ करें।

(२) पाठ आरम्भ करने के पूर्व पाठ की ' भूमिका ' (अर्थात् वह वाक्यज्ञान जिसको सहायता पा जाने से विद्यार्थियों को पाठ के समझने में सरलता हो) विद्यार्थियों को अवश्य बतला देना चाहिये ।

(३) पाठ को इतना मनोरञ्जक बना लेना चाहिए कि विद्यार्थियों का ध्यान पाठ की ओर उसी प्रकार आकृष्ट रहे जैसे मक्खी का मिठाई में अथवा बक का मङ्गलों में ।

(४) पाठ का समय उतना ही रखना चाहिये कि जितनी देर विद्यार्थी अपना ध्यान सम्यक् रीति से पाठ की ओर लगा सकें ।

(५) पाठ पढ़ाते समय " पठन शैली " (पढ़ने का ढंग) पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि फटी मृदग या ढोलक तथा टूटे हुए तारों वाली वीणा का स्वर किसी के कानों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता, तथा ऐसा स्वर हृदय को भी प्रभावित नहीं कर सकता है । इसी प्रकार अनियमित रूप से पढ़ने का प्रभाव न तो पढ़ने वाले पर हाता है और न सुनने वाले पर । इस लिये अध्यापक को पहले स्वयम् स्वर, विराम आदि का ध्यान रख कर प्रभावात्पादक रीति से पढ़ने का अभ्यास करना चाहिए ; फिर उसी प्रकार विद्यार्थियों से पढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करने से अध्यापक और विद्यार्थी पाठों के समझने और समझने में आशातीत लाभ प्राप्त करेंगे ।

(६) एक बार नियमपूर्वक पढ़ा लेने के बाद फिर शब्दार्थ, मुहावरे और कहावतों के समझने का प्रयत्न करना चाहिए, यह बातें व्युत्पत्ति और उदाहरणों के द्वारा विद्यार्थियों को समझ में शीघ्र आ जाती हैं ।

(७) पाठ्य-पुस्तक पढ़ाने के साथ ही व्याकरण-सम्बन्धी प्रश्न करना और समझाना विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है ।

(८) पद्यों के अर्थ, अन्वय के अनुसार कराने का अभ्यास कराना चाहिये, और गद्य-खंडों को अपनी भाषा में स्पष्ट रीति से लिखवा कर समझाने का प्रयत्न कराना भी जरूरी है ।

(९) जिन बातों के स्मरण रखने में विद्यार्थी बारम्बार भूल करते हैं उनका अभ्यास खूब कस कर कराना चाहिये ।

(१०) पाठों में दिए हुए अभ्यासों का अभ्यास अध्यापक महाशय को ध्यानपूर्वक करना चाहिए और हर पन्द्रहवें दिन पढ़ाये हुए पाठों के अभ्यासों से कुछ प्रश्न चुन कर तथा कुछ अपने मिला कर परीक्षा लेनी चाहिये ।

प्रयाग
२०—८—३० }

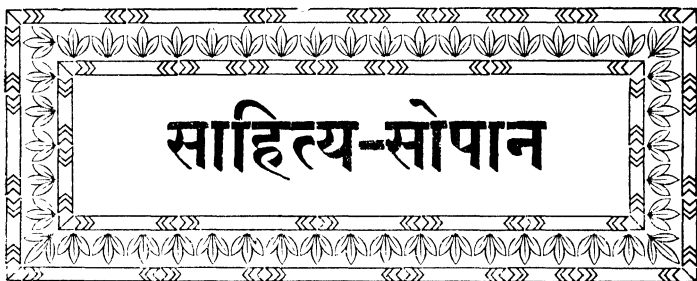
{ दयाशंकर दुबे
गङ्गानारायण द्विवेदी

द्वितीय भाग

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१—प्रभु-प्रार्थना (पद्य)	श्री० पं० माधव प्रसाद मिश्र ...	१
२—शिष्टाचार और सन्य (गद्य)	श्री० पं० गुलाब राय एम० ए० ...	४
३—भारत (पद्य)	श्री० पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ...	१०
४—उद्योग धन्ये (गद्य)	... श्री० भगवान दास केला ...	१२
५—मोहन (पद्य)	... श्री० पं० बदरीनाथ भट्ट ...	१७
६—दीर्घ जीवन (गद्य)	... श्री० पं० चक्खन लाल गर्ग...	१६
७—प्रशस्त पाठ (पद्य)	... श्री० पं० नाथूराम शंकर शर्मा	२५
८—अमरकण्टक (गद्य)	... श्री० पं० चक्रपाणि चतुर्वेदी...	२७
९—अनाथ (पद्य)	.. श्री० ठाकुर गोपालशरण सिंह	३४
१०—सम्भाषण में शिष्टाचार (गद्य)	श्री० पं० कामता प्रसाद गुरु	३६
११—मकड़ी (पद्य)	... श्री० पं० चमूपति एम० ए० ...	४७
१२—अलसी (गद्य)	... श्री० जी० एम० पथिक ...	४६
१३—ऊषे (पद्य)	... श्री० पं० मुकुटधर पाण्डेय ...	५८
१४—वृक्षचर प्राणी (गद्य)	श्री० पं० वनमाली प्रसाद शुक्ल ...	६०
१५—गङ्गा की शोभा (पद्य)	श्री० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ...	६६
१६—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (गद्य)	श्री० पं० सुदर्शनचार्य बी० ए०	७१
१७—शान्ति (पद्य)	... श्री० पं० रूपनारायण पाण्डेय ...	७८
१८—धारा नगरी (गद्य)	श्री० पं० दयाशंकर दुबे एम० ए० ...	
	एल--एल० बी ...	८१
१९—रामचन्द्र जी का बालपन (पद्य)	गोस्वामी तुलसीदास ..	८५
२०—सम्राट अकबर (गद्य)	श्री० पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी	८६

विषय	लेखक	पृष्ठ
२१—युवा संन्यासी (पद्य) श्री० पं० माधवप्रसाद मिश्र ...		६३
२२—सभ्यता की कथा (गद्य) श्री० नरेन्द्र नाथ ...		६८
२३—वन विहंगम (पद्य) श्री० पं० रूपनारायण पाण्डेय ...		१०३
२४—बर्फ की बहार (गद्य) श्री० पं० इलाचन्द्र जोशी ...		१०७
२५—घनश्याम देखे ? (पद्य) श्री० पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी...	एम० ए०, एल० टी० ...	१११
२६—रेल (गद्य) श्री० भगवान दाम केला ...		११३
२७—बम्बई का समुद्र-नट (पद्य) श्री० कन्हैयालाल पोद्दार...		११७
२८—सच्चरित्रता (गद्य) श्री० पं० बाल कृष्ण भट्ट ...		११९
२९—सूरदास के पद (पद्य) सूरदास ...		१२३
३०—सर भाण्डारकर (गद्य) श्री० समीक्षक ..		१२५
३१—मातृ-भूमि (पद्य) श्री० पं० बदरीनाथ भट्ट ...		१३६
३२—रसायन क्या है ? (गद्य) श्री० प्रोफेसर फुलदेवसहाय वर्मा	एम० एम० भी० इत्यादि ...	१४०
३३—दिल के फलाले (पद्य) श्री० पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय		१४४
३४—औरङ्गजेब का पत्र-आज्ञा शाह के नाम (गद्य) ...	श्री० भोलालाल दाम बी० ए० ...	१४६
३५—यशोदा जी का पुत्र-प्रेम पद्य) श्री० अयोध्यासिंह उपाध्याय		१४४
३६—कृषि (गद्य) ... श्री० भगवानदाम केला ...		१४७
३७—घनाष्टक (पद्य) श्री० पं० श्रीधर पाठक ...		१६१
३८—राना प्रताप के यहाँ मानसिंह का आनिर्धय	(नाटक) श्री० बाबू राधाकृष्णदास ...	१६५
३९—परशुराम-लक्ष्मण-संवाद (पद्य) तुलसीदास ...		१७२
४०—समुद्र यात्रा का आनन्द (गद्य) श्री० बाबू जगन्नाथ खन्ना		१८४
४१—गोवर्द्धन-धारण (पद्य) श्री० बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...		१९०
४२—महर्षि दधीचि (गद्य) श्री० पं० चन्द्रशेखर शास्त्री साहित्याचार्य		१९५



द्वितीय भाग

१-प्रभु-प्रार्थना

जय जय जय जगदीश ! दीन जन के रखवारे ।
जय जय करुणा-मिन्धु परम प्रिय पिता हमारे ॥
जय अनाथ के नाथ ! हाथ गहि राखन हारे ।
जय निर्धन के धन निर्वल के बल अति प्यारे ॥
जय जयति सुदर्शन-चक्रधर, सकल भक्त-भव-भय-हरण ।
जय दान-दयाल दयानिधे, रमा-रमण, अशरण-शरण ॥ १ ॥
तव महिमा, हे महामहिम ! नहिं जाय बखानी ।
सेल मारदा आदि भुके, सुर मुनि ऋषि ज्ञानी ॥
'नेति नेति' कह वेद, भेद कछु जात न जान्यो ।
अगम, अगोचर, अजर, अकथ, सब विधि सों मान्यो ॥

हम मतिमन्द गँवार तदपि दुःसाहस करके ।
कहन चहन कछु अहा ! चपल रसना यह फरके ॥ २ ॥

ज्यों नृप, कीरति-कुशल-बन्दि जन के आकृत नित ।
अर्थ हीन, बै मेल, कीर-रघ सुनत मुदित चित ॥
वेद विदित ! गन्धर्व गेय ज्यों विनय हमारी ।
यह निहचै जिय माहिं, लागि है तुम कहँ प्यारी ॥
तोसों दयानिधान ! बात निज जिय की भाखैं ।
जदपि तिहारे जोग पास कछु पूँजि न राखैं ॥ ३ ॥

यह मुख, कब यहि जोग, लेइ जो नाम तिहारो ।
हाड़ मांस कफ चाम आदि को बन्यो पिटारो ॥
परनिन्दा को धाम अहो ! का कहें जुबानी ।
यह रसना रस-हीन, कुच-विष से लपटानो ॥
महा अपावन बदन कहाँ कहँ नाम पवित्तर ।
अति रमनीक, सुचारु सुधा-सम सुखद प्रीतिकर ॥ ४ ॥

हव्य कव्य के हेतु धृष्ट कूकर ज्यों दौरत ।
तुष गुण वर्णन काज चित्त नेमन कहँ टारत ॥
यद्यपि यह धृष्टता महा जो करत क्रूर मन ।
तदपि आपनी ओर हेरियो तमा-निकेतन ॥
जो हमारि करतूत ओर हरि ! नेक निहारो ।
तो पुनि जन भर होय न कहँ निरघाह हमारो ॥ ५ ॥
अन्तर्यामी आप सकल जानत हो चित की ।
तब करुणा-बल बिना बात एकहुँ नहिं हित की ॥

रोगग्रस्त तन दरिद्र गेह मन अतिशय चञ्चल ।
 धन नाते तब नाम काम सब करहिं अमंगल ॥
 पै तुम कात सँभार चित्त हम सरिस अधिन की ।
 पूरत मन की आस त्रास मेटत प्रति दिन की ॥ ६ ॥
 निज तसन की करनिन कहैं देख्योहु न चाहत ।
 बाँह गहे की लाज नाथ इक सदा निबाहत ॥
 'कुमाशील' तब नाम सुन्यो है हमने जब ते ।
 निडर भये, संसार माहि, डोलत हैं तब ते ॥
 तुम सो स्वामी पाय मूढ़ जाँ औरन ध्यावैं ।
 कल्पवृत्त को त्यागि बचूरन पोखि लगावैं ॥ ७ ॥

—माधव प्रसाद मिश्र

अभ्यास

- १—परमात्मा के कौन कौन गुण हैं ? उन्हें बतलाओ ।
- २—ईश्वर के सामने हम लोगों का क्या दशा है ? उस दशा को निवारण करके हमें क्षमा देने के कारण ईश्वर का तुम कौन सा नाम रखोगे ?
- ३—इस पद्य में पढ़ कर देखो कि अशुद्ध शब्द कौन कौन हैं उनके शुद्ध रूप अपनी नोटबुक में लिखो ।
- ४—अधिन, दासन और करनिन शब्दों में 'न' लगाने का क्या अभिप्राय है ? साफ़ साफ़ समझाओ ।
- ५—निर्धन, निर्बल, सुखद, अपावन और निडर शब्दों के प्रतिकूल अर्थ वाले शब्द बतलाओ

६—नेति नेति, गेय और चक्रधर के अर्थ स्पष्ट समझाओ ।

७—इस पाठ के गुण वाचक संज्ञा शब्दों के विशेष्य और विशेषण बतलाओ ।

२-शिष्टाचार और सत्य

शिष्ट पुरुषों के आचार को शिष्टाचार कहते हैं । यह तो उस का व्यापक अर्थ है ; किन्तु इसके प्रचलित अर्थ में भलाई के साथ एक घुरी ध्वनि भी निकला करती है । जब लोग कहते हैं कि शिष्टाचार को छोड़ कर वास्तविक बात ऐसी है अथवा शिष्टाचार के पश्चात् मुझे यह निवेदन करना है, तो उनके कथन से यह व्यञ्जित होता है कि वास्तविक बात शिष्टाचार से बाहर हो सकती है और शिष्टाचार केवल आडम्बर मात्र है । इतना मानते हुए भी जहाँ शिष्टाचार में जरा सा भी फरक पड़ा कि उनका मन मलीन हो जाता है और मन की बात को उनके भ्रमझू आदि प्रकट कर देते हैं । यदि आप को किसी ने प्रणाम न किया तो आपका क्या बिगड़ गया और यदि आप को किसी ने पूज्यवर या गुरुवर कह कर सम्बोधन कर दिया तो उसने आप को क्या दे दिया ? कोई पृष्ठ सकता है कि किसी मनुष्य के लिये आदर सूचक उत्थान देने से क्या लाभ है ? यदि डाक्टर तुरन्त फोस लेकर जेब में रख ले तो वह लालची समझा जावे और यदि झूठमूठ यह कह दे कि इसकी क्या जरूरत थी ? यह तो आपकी बड़ी मिहरबानी है तो वही शिष्ट समझा जाता है । यदि

अर्जी में 'गरीब परवर सलामत' न लिखें तो क्या अर्जी नामंजूर हो जावे ? यदि पत्र के सरनामे पर योग्य सेवा में न लिखें तो क्या पत्र डाक में न जा सके ? अथवा किसी को 'श्रोमान्' न कहा जावे तो क्या वह पुरुष सम्बोधित नहीं किया जा सकेगा । यदि काम करने वाला पुरुष अपने पुण्यप्रताप की प्रशंसा न करे तो क्या उसका काम न चलेगा ? यदि छोटे भाई के घर किसी लड़के या लड़की का व्याह हो और रुपया भी वही लगावे और निमन्त्रण-पत्र को बड़े भाई के नाम से न छपवावे तो क्या व्याह न होगा ? यदि हमारी कारगुजारी अथवा सद्गुणों को कोई प्रशंसा न करे तो उसमें तुराई क्या है ? सीधे-सादे ढंग से काम चल जाने पर भी लोग इन सब बातों को करते ही हैं । यदि किसी आदमी के मन में आपके पास बैठने की इच्छा न भी हो तो भी आपके प्रति वह ऐसा प्रकट करेगा कि वह आपके बातचीत और सहवाय से बहुत ही मुग्ध है, यहाँ तक कि उठना ही नहीं चाहता । यह बात सब जानते हैं कि दूसरे मनुष्य को भी कुछ काम है, वह आप से वास्तविक प्रेम नहीं करता । लिखने को यदि 'दासानुदास' ही लिखें और बातचीत में यदि अपने को रजकण से भी तुच्छ बतलावें तो भी यदि उसने आप की बातों से ऊब कर स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब हम आप की बातों से ऊब गये तो आप को क्यों तुरा लगता है ? विद्यार्थी यदि अध्यापक के नीरस व्याख्यान से ऊब कर घड़ी की ओर देखने लगे तो वह अपने सहज भावों से इस बात को प्रकट करने के लिये

क्यों दोषी ठहराया जावे ? ये सब ऐसी बातें हैं, जिनसे आदमी को यह सहज ही प्रतीत हो जाता है कि शिष्टाचार में असत्य बातें बहुत सी शामिल हैं। परन्तु इतना होते हुए भी जब तक हम पूर्ण विगतस्पृह सन्यासी न बन जायें तब तक हम समाज के किसी न किसी प्रकार के असत्य अथवा कम से कम अनावश्यक बातों के पक्षपाती रहते ही हैं और यह भूल जाते हैं कि 'साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप' यह झूठ कहाँ तक ग्राह्य है। प्रिय-भाषण की सभी लोगों ने प्रशंसा की है। कहते हैं कि "सत्यं ब्रयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्*" यहाँ तक तो गनीमत है किन्तु यहाँ तो प्रिय असत्य बोलने और बुलवाने की ज़रूरत रहती है। क्या हमारा समाज झूठ पर चलता है। पश्चिमी शिष्टाचार झूठ के लिये बदनाम भी है। शिष्टाचार से कोई समाज शून्य नहीं है। अँगरेज़ी में हम बिना जान-पहचान वाले पुरुष को 'डियर सर' अर्थात् प्रिय महाशय और योर्स फेतफुली लिखते हैं। 'आप का विश्वासनीय' लिखने वाला लिखते समय क्या याद रखता है कि वह मेरा प्यारा है और मैं विश्वासनीय हूँ। विश्वासनीय होने की दुहाई देने की क्या आवश्यकता ?

यदि सत्य की संकुचित परिभाषा की जावे तो ये सब बातें असत्य हैं ; किन्तु विस्तृत दृष्टि से ये बातें एक प्रकार से नम्रता के भाष की द्योतक होने के कारण पुरुष के मानसिक झुकाव का परिचय देती हैं और इसी अंश में सत्य भी हैं। यदि कोई हमको

* सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु अप्रिय सत्य न बोलो ।

सलाम करता है तो वह कुछ देता नहीं है और यह बात भी नहीं, कि प्रणाम या पालागन करने वाला वास्तविक रूप से नमन करता है। किन्तु इतना सत्य है कि वह हमको इस योग्य समझता है कि हमारे लिये हाथ उठाते अथवा उत्थान देते समय स्वयं शारीरिक कष्ट उठाना चाहता है। इसके अतिरिक्त वह हमारी जातीय सभ्यता और उदारता का परिचय देता है, कि हमारा समाज अतिथि को पूजा की दृष्टि से देखता है। हम चाहे जो कुछ हों ; किन्तु हमारी सभ्यता के विधायक अवश्य नम्र और विनीत भाव रखते थे। इसके अतिरिक्त हमारा सलाम करना अथवा किसी को उत्थान देना यह भी बतलाता है कि हम इतनी उद्दण्ड प्रकृति के नहीं हैं कि अपने सामाजिक नियमों का अनुकरण न करें अथवा हम दूसरों को अपने सामने कुछ न समझें। जब लोग आपस में जय रामजी की, जय राधेज्याम अथवा जय श्रीकृष्ण कहते हैं तब वे इस बात का परिचय देते हैं कि हम सब हिन्दूसभ्यता के सूत्र में बँधे हैं। यदि कोई पुरुष आपके पास अपनी इच्छा के विरुद्ध भी दंड घाटे बैठा रहे तो वह इस बात का प्रमाण देता है कि वह आप के लिये इतना समय देने को तैयार है और कुछ कष्ट उठाने को भी तैयार है। दूसरों के लिये अपनी इच्छाओं का अवरोध करना एक प्रकार से आत्म-त्याग का अभ्यास है।

यदि यह कहा जावे कि इन बाहरी बातों से भीतरी भावों का क्या सम्बन्ध ? तो हमें कहना पड़ेगा कि बाहरी बातों का

मानसिक भावों पर बहुत कुछ असर पड़ता है। मनोविज्ञान शास्त्र के आचार्यों का कहना है कि हमारे भावों का उदय बाहरी वस्तु के सम्पर्क से ही होता है। वस्तुओं के सम्पर्क से ही उसकी वेदना क्रियात्मक स्नायुओं द्वारा मन के पास पहुँचती है और फिर उस चीज़ का ज्ञान होता है। कुछ विद्वानों की सम्मति इसके विपरीत है, वे बाहरी चीज़ों की प्रधानता की अपेक्षा मन की प्रधानता को ही मानते हैं। यह बात विषादास्पद भले हो कि प्रधानता किसकी है। पर यह सभी स्वीकार करते हैं कि बाहरी बातों का मन पर पूरा प्रभाव पड़ता है। यदि हम झूठमूठ भी शोक का भाव बना लें तो मन में कुछ न कुछ शोक की उत्पत्ति हो ही जाती है। झूठे आँसू सच्चे आँसू भी बन जाते हैं। शोक-ग्रस्त मनुष्य को भी यदि एक अच्छी जगह में पहुँचा दिया जाय तो उसका शोक कम हो जाता है। इसी प्रकार नम्रता के अभिनय से भी हृदय में नम्रता के लिये स्थान मिल जाता है। सभ्य पुरुष को स्वयं भी इस बात का ख्याल होने लगता है कि उसका बाहर भीतर एकसा हो जावे। यदि हम ऊपर से भी अच्छा व्यवहार करने लगें तो सम्भव है कि कुछ दिनों के बाद भीतर से भी अच्छा व्यवहार करने लगें। इतना अवश्य है कि ऊपरी तौर के अच्छे व्यवहार से लोग धोके में पड़ जाते हैं। मृगचर्म-परिच्छन्न व्याघ्र होना बुरा है; किन्तु यह बात शिष्टाचार के लिये लागू नहीं हो सकती।

यदि कोई ऐसी बात हो जिसे स्पष्ट रूप से कहना शिष्टाचार के

विरुद्ध हो तो भी शिष्टाचार की रक्षा करते हुए वह बात कही जा सकती है। अतएव यह दोष भी इस पर नहीं लगाया जा सकता। दूसरी ओर से कोई वैमनस्य हो तो इसके कम हो जाने की इसे सम्भावना है। शिष्टाचार का व्यवहार करने से आत्मा में नम्रता और शील का मान बढ़ता रहता है। इससे समाज में परस्पर प्रेम और शान्ति बढ़ती है। यदि शिष्टाचार में असत्य की मात्रा है तो कुछ वास्तविक नहीं है। आदर्श की दृष्टि से शिष्टाचार में जो असत्य की मात्रा दिखाई पड़ती है, वह वास्तविक नहीं है। क्योंकि आदर्श भी एक ऐसी मिथ्या कल्पना है जिसका कहीं मान ही नहीं होता। परन्तु ये ऐसी बातें हैं जिनका व्यवहार की दृष्टि से कुछ महत्व नहीं है। ये दोनों बातें ध्रुव तारे की भाँति पथ प्रदर्शक हो हमारे जीवन का बनाती हैं। यदि आदर्श ऊँची भावना का उदय करता है तो शिष्टाचार हम में विनय, सत्यता, विश्वास और प्रेम के भावों को बढ़ाता है और समाज में सुख और शान्ति स्थापित करता है।

—गुलाबराय

अभ्यास

- १—शिष्टाचार किसे कहते हैं ?
- २—शिष्टाचार में कुछ असत्य का आभास भी पाया जाता है ? यदि जाता है तो क्या ?
- ३—शिष्टाचार का पालन करने से क्या क्या लाभ होते हैं ?
- ४—अभूभङ्ग, दासानुदास, विवादास्पद, मृगचर्म-परिच्छन्न व्याघ्र शब्दों को समझाओ और इनका प्रयोग अपने बनाये वाक्यों में करो।

३-भारत

(१)

हे जननी, हे जनक हमारे, हे प्रिय भारत देश !
 युगल नयन क्यों सजल हुये हैं, क्यों यह रुखे केश ?
 क्यों मिट्टी में बैठा तू है, क्यों यह मैला वेश ?
 तीस कोटि सन्तान तुझे जब, कहते अपना देश ।
 क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुझको है क्लेश ?
 क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(२)

लेकर जन्म बुद्ध ने खोला, जहाँ मुक्ति का द्वार ।
 जिसको शोश झुकाता अब भी, है आधा संसार ॥
 सागर तक अशोक की छाई, कीरति जहाँ विशेष ।
 है जननी उनकी ही तू तो, औ उनका ही देश ॥
 क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुझको है क्लेश ?
 क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(३)

जाकर किया सैन्य ने जिनके, लंका पर अधिकार ।
 सेतु बनाकर जिसने लाँघा, सागर अगम अपार ॥
 तिब्बत चीन, जपान जिन्होंने, अपने किये निवेश ।
 उनको माँ मिट्टी में लांटे, करके मैला वेश ॥

क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुमको है क्लेश ?
क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(४)

जहाँ कण्ठ से तानसेन के, निकली मीठी तान ।
धर्म सुधार किया शंकर ने, तुलसी ने जहाँ गान ॥
जहाँ प्रताप, शिवाजी जूझे, धन्य धन्य वह देश ।
हम भी धन्य रक्त का उनके है हममें यदि लेश ॥
क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुमको है क्लेश ?
क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(५)

मुख मगडल को यद्यपि तेरे लिया तिमिर ने घेर ।
तो भी तेरी नूतन गरिमा, चमक उठेगी फेर ॥
करें कालिमा दूर अगर हम, तो मनुष्य, नहीं भेष ।
हे देवी, हे देव हमारे, हे प्रिय भारत देश ॥

—जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

अभ्यास

- १—तीस कोटि सन्तान से क्या समझते हो ?
- २—क्या तीस कोटि सन्तान वाला देश दुःखी हो सकता है, यदि हो सकता है तो क्यों ?
- ३—तुम्हारे देश में पैदा हुए किन किन महापुरुषों की चर्चा इस पद्य में है ? उनकी संक्षिप्त कथायें बतलाओ और स्मरण रखने के लिये अपनी नोटबुक में दर्ज करो ।

४—इस कविता को पढ़ कर अपने देश के सम्बन्ध में तुम अपना क्या कर्त्तव्य निश्चित करोगे ?

४—उद्योग-धन्ये

इसमें सन्देह नहीं, कि हमें अन्न, कपास, गन्ना आदि भूमि से उत्पन्न पदार्थों की बहुत आवश्यकता होती है ; परन्तु केवल उन चीजों से ही हमारा सब काम नहीं चल जाता । हमें ऐसी भी बहुत सी चीजों की ज़रूरत होती है जिनकी खेती नहीं की जाती, या जो भूमि से उत्पन्न पदार्थों से, भिन्न भिन्न प्रकार से बनायी जाती हैं । उदाहरणार्थ हमें पहनने को वस्त्र चाहिये । भूमि से कपास पैदा की जा सकती है, परन्तु उससे सूत के कपड़े बनाने का काम और भी बाकी रहेगा । तब ही हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है । इसी प्रकार जंगल में वृक्ष पैदा होते हैं ; परन्तु उनके लकड़ी के तख्ते तैयार करने, या गोंद, लाख आदि एकत्र करने का काम और भी करना होता है । तुमने शायद यह भी सुना होगा कि सोना चाँदी लोहा ज़मीन से निकलता है, परन्तु जिस रूप में वह मिलता है, वह बहुत उपयोगी नहीं होता । उसे बड़ी हाशियारी और परिश्रम से साफ़ किया जाता है ; तब उसकी आवश्यक चीजें बन सकती हैं ।

कच्चा और तैयार माल—इससे स्पष्ट है कि भूमि से जो चीजें मिलती हैं, उनमें से बहुत सी को व्यवहार में लाने के लिये हमें तरह तरह के काम करने पड़ते हैं । इन कामों को उद्योग-धन्ये का

काम कहते हैं। उद्योग-धन्यों द्वारा 'कच्चेमाल' के 'तैयार माल' बनाया जाता है। उदाहरणार्थ रूई, ऊन, तेलहन, लकड़ी, लोहा आदि कच्चा माल हैं। उद्योग-धन्यों से इनके कपड़े, तेल, कुर्सी, मेज़, औज़ार आदि बनते हैं जिन्हें तैयार कहते हैं।

खेती और उद्योग-धन्ये—ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों लोगों के रहन-सहन के ढंग में शौकीनी आती जाती है, उनकी तैयार माल की आवश्यकतायें दिनों दिन अधिक होने लगती हैं। इनका परिणाम यह होता है कि खेती का काम करने वालों की संख्या धीरे धीरे घटने लगती है और उद्योग-धन्यों में काम करने वाले बढ़ने लगते हैं। यद्यपि खेती और उद्योग-धन्यां का आपस में एक दूसरे से बहुत सम्बन्ध है; परन्तु दोनों कामों के साथ साथ उन्नति होने से ही जनता खुश हाल होती है। इनमें से किसी एक प्रकार की आजोषिका के आसरे बहुत से आदमियों का नहीं रहना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से जब कभी उसकी दशा खराब होगी, तो अधिकांश जनता को कष्ट पहुँचेगा।

दस्तकारी—प्राचीन काल में, भारतवर्ष में दस्तकारियों का बहुत प्रचार था। खेती की उपज के अलावा लोगों को जिन जिन चीजों की जरूरत होती थी, उन्हें वे यहाँ बना लेते थे। उस समय यहाँ से बहुत सा बढ़िया तैयार माल विदेशों में भी बिकने जाता था। निस्सन्देह पहले दस्तकारियों के कारण भारत-वर्ष का दर्जा अन्य देशों से कहीं ऊँचा था। पर अब यह बात नहीं

रही। जब से कल-कारखानों की लहर चली है, भारतवर्ष बहुत पीछे रह गया, अब तो यहाँ ही बहुत सा माल विदेशों से आता है।

यह ठीक है कि हाथ से बनाया हुआ माल, मशीनों से तैयार किये हुए माल का मुकाबला नहीं कर सकता, बहुत मँहगा रहता है, तथापि यदि यहाँ के आदमी दस्तकारियों की ओर काफ़ी ध्यान दें तो उनकी बहुत सी ज़रूरतें यहाँ ही पूरी हो सकती हैं। और देश का बहुत सा धन विदेशों को जाने से रुक सकता है।

तुम जानते हो कि यहाँ के किसान बहुत निर्धन हैं, उन्हें खेती से जो पैदा होता है, वह प्रायः काफ़ी नहीं होता। इसके सिवाय खेती का काम साल में हर समय नहीं होता। खेती से उनका जो समय बचता है, वह बेकार जाता है। यदि वे अपने अवकाश के समय को दस्तकारी में लगावें तो उनके उस समय का भी सदुपयोग हो सकता है और उन्हें कुछ आमदनी भी हो सकती है।

भिन्न स्थानों के लिए अलग अलग दस्तकारियाँ उपयोगी हो सकती हैं। सूत कातना और कपड़ा बुनना एक ऐसा काम है जो बहुत आसानी से किया जा सकता है। इसकी हर जगह ज़रूरत भी होती है, इसको शुरू करने में तथा अन्य आवश्यकता होने पर उसे ढ़ाँड़ देने में कुछ कठिनाई नहीं होती। इस लिए किसानों के लिए यह दस्तकारी विशेष रूप से उपयोगी है। सहकारी समितियों का विस्तार होने से देश की दस्तकारियों की बहुत

उन्नति हो सकती है। इन समितियों के विषय में आगे लिखा जायेगा।

कल-कारखाने—निदान, भारतवर्ष के आदमी दस्तकारियों की तरफ अधिक ध्यान दें तो बहुत लाभ हो ; परन्तु इसका यह मतलब नहीं, कि देश में कल-कारखाने बिल्कुल हों ही नहीं। अब तो कल-कारखानों का ही ज़माना है, उनमें बड़ी बड़ी मशीनों द्वारा, खूब बड़े पैमाने पर, भाफ या बिजली आदि की सहायता से, बहुत सी तरह तरह की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। इस ज़माने में कल-कारखानों से बचना बहुत मुश्किल है। हमारी ज़रूरतें बहुत बढ़ गयी हैं। ज़रूरत की चीज़ों में बहुत सी ऐसी हैं, जो मशीनों के बिना तैयार ही नहीं हो सकतीं। इसके अलावा जो चीज़ें तैयार भी हो सकती हैं, वे कल-कारखानों में बनी चीज़ों से कम सुन्दर और अधिक महँगी पड़ती हैं। निदान अब हर एक देश में, कुछ बड़े बड़े कारखानों की ज़रूरत होती है। हाँ, कारखानों में वही माल बनना चाहिये, जिसकी देशवासियों को वास्तव में ज़रूरत हो। फेशन, वा भोग-विलासादि की सामग्री का बहुत प्रचार होना अनुचित है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि कल-कारखानों में काम करने वालों की भलाई तथा स्वास्थ्यादि की रक्षा के लिये उचित क़ानून हो।

कारखानों का क़ानून—भारतवर्ष के बड़े बड़े नगरों में कुछ कारखाने खुले हुए हैं। यहाँ के कारखानों के क़ानून की कुछ मुख्य मुख्य बातें ये हैं :—

१—जिन कारखानों में मशीन से काम होता हो, और बीस या अधिक आदमी काम करते हों, उनमें यह क़ानून लागू होता है ।

२—बारह वर्ष से कम उम्र वाले बालकों से कारखानों में काम नहीं लिया जा सकता ।

३—बालकों से अधिक से अधिक छः घंटे काम लिया जा सकता है । उन्हें औसत से साढ़े पाँच घंटे में आध घंटे का अवकाश मिलना चाहिए, और उनसे लगातार चार घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता ।

४—बड़ी उमर वाले, हफ़्ते में साठ घंटे से अधिक, और एक दिन में ग्यारह घंटे से अधिक, काम नहीं कर सकते ।

५—स्त्रियों से तथा अठारह वर्ष से कम उमर वाले आदमियों से, जाखम के काम नहीं लिये जा सकते ।

६—मशीनों के चारों तरफ़ घेरा या बाड़ लगानी चाहिए ।

७—पानी, रोशनी, हवा, सफ़ाई आदि का सुप्रबन्ध रहना चाहिए ।

८—काम करते समय चोट-चपेट लग जाने पर मज़दूरों को, तथा उनके काम करते हुए मर जाने पर उनके कुटुम्ब को, कुछ धन दिया जाने का प्रबन्ध किया गया है ।

९—यदि कारखाने के मालिक इस क़ानून को तोड़ें तो उन पर ५०० तक जुर्माना हो सकता है ।

इस बात की जाँच करने के लिए कि कारखानों में इस क़ानून के अनुसार काम हो रहा है, या नहीं सरकार की तरफ़ से कुछ निरीक्षक या इन्स्पेक्टर रहते हैं।

अभ्यास

- १—उद्योग-धन्धा से तुम क्या समझने हो ? साफ़ साफ़ समझाओ।
- २—कच्चा माल और पक्का माल किसे कहते हैं ? तुम्हारे देश में कौन कौन कच्चा माल पैदा होता है और विदेशों में भेजा जाता है ? उसके बदले में वहाँ से कौन सा तैयार माल तुम्हारे देश में आता है ?
- ३—पहले यहाँ कौन कौन सी दस्तकारियाँ होती थीं ? किसानों को खाली समय में क्या काम करना चाहिये ?
- ४—कारखानों के क़ानून की मुख्य मुख्य बातें कौन हैं ?
- ५—कारखानों में क़ानून के अनुसार काम होता है या नहीं ? इसकी जाँच करने को सरकार की तरफ़ से कौन अफ़सर होता है ?
- ६—शब्दार्थ लिखो—

उदाहरणार्थ, वृद्धि, दस्तकारी, खुशहाल, निरीक्षक, सदुपयोग, स्वास्थ्यदि, भोग विज्ञासादि।

५—मोहन

यह स्वार्थ-तम का परदा अब तो उठा दे मोहन !
 अब आत्मत्याग रवि की आभा दिखा दे मोहन !
 पूरब में फैल जावे शुभ देश-भक्ति लाली,
 सुसमीर एकता की अब तो चला दे मोहन !

मृदु प्रेम की सुरभि को पहुँचा दे हर तरफ़ तू,
 मन पल्लवों में आशा-वूँदे बिछा दे मोहन?
 सद्भाव पङ्क्तियों को अब तो ज़रा हँसा दे,
 जातीयता-नलिन का मुखड़ा दिखा दे मोहन?
 द्विज वृन्द बन्दना कर तेरा सुयश सुनावे,
 बैरी उलूक-गण को अब तो ठका दे मोहन?
 यह द्वेष का निशाचर हमको सता रहा है,
 सत्कर्म-शर से इसकी गर्दन उड़ा दे मोहन?
 आलस्य-चोर भी है पीछे पड़ा हमारे,
 कर्तव्य-दण्ड से तू उसको डरा दे मोहन?
 अज्ञान-स्वप्न में है दुख दैत्य ने सताया,
 सुख की लगा के चुटकी हमको जगा दे मोहन?
 चेतें, मिलें, खड़े हों, स्वत्वों को अपने चीन्हें,
 मुरली की तान मीठी ऐसी सुना दे मोहन?

—बदरीनाथ भट्ट

अभ्यास

- १—मोहन किसे कहते हैं? इस पद्य में मोहन से क्या प्रार्थना की गई है? इस पद्य को कण्ठस्थ (जबानी) कर लो।
- २—स्वार्थ-तम, देश-भक्ति, जातीयता, नलीन और सत्कर्म-शर में कौन कौन समास हैं? इन शब्दों के विग्रह भी करो।
- ३—मुरली की तान का क्या प्रभाव होता है?

६-दीर्घ जीवन

अंग्रेजी में एक कहावत है। 'सिम्पल लिविंग एंड हाइ थिंकिंग' जिसका अर्थ है सादा जीवन और उच्च विचार। जीवन को सुखमय बनाने के लिए इससे अधिक मूल्यवान् शिक्षा और कोई नहीं। पाश्चात्य सभ्यता का आदर्श इससे भिन्न है। सभ्यता का अर्थ यह नहीं कि आवश्यकतायें जितनी अधिक बढ़ाई जा सकें बढ़ाई जायें; किन्तु सादा जीवन और उच्च विचार है। भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों का यही आदर्श था। उन लोगों का जीवन सुखमय था। अतएव इस आदर्श के ग्रहण करने से ही हम लोग दीर्घ काल तक सुखी रह सकते हैं।

एडीसन का नाम इस समय सारे संसार में प्रसिद्ध है। अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से उन्होंने अक्षय कीर्ति प्राप्त की है। उनकी अवस्था ८० वर्ष से भी अधिक है, तो भी वे कितना कार्य करते हैं उसको देखकर सबका आश्चर्य हाता है। उन्होंने कार्य करने की इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त की? एडीसन के प्रपितामह, एक दीर्घजीवी मनुष्य के सरल जीवन व्यतीत करने के सरल ढङ्ग का देखकर इतना अधिक मुग्ध हो गये थे कि उन्होंने उस मनुष्य का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। वे १०२ वर्ष तक जीवित रहे। उनके पुत्र एडीसन के पितामह उसी सादगी की परिस्थिति में पालित-पोषित हुए और १०५ वर्ष की आयु तक जीवित रहे। उनके ७ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से एडीसन के पिता एक थे।

सबके सब ८० वर्ष से अधिक जीवित रहे और उनमें से तीन तो शताब्दी के बहुत समीप पहुँच गये थे। एडीसन भी अपनी कार्य करने की शक्ति और आरोग्यता का मुख्य कारण सादा जीवन बतलाते हैं, जिसके संस्कार उनको उनके प्रपितामह से मिले हैं।

सादा जीवन व्यतीत करने से जीवन की अवधि लम्बी होती है। कार्य करने की शक्ति बढ़ती है और सब प्रकार जीवन आनन्दमय बनता है। सादा जीवन से अर्थ गीता के शब्दों में 'युक्ताहार-विहार' से है, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले को सिद्ध होता है, और न बिलकुल न खाने वाले को तथा न अति शयन करने के स्वभाव वाले को और न अत्यन्त जागने वाले को ही सिद्ध होता है।

इस लिए दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए युक्ताहार-विहार अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग समझते हैं कि सादा भोजन करने तथा अपनी आवश्यकताओं को कम करने से जीवन के आदर्श से गिर जायेंगे वे जानबूझ कर अपने पाँवों में कुल्हाड़ी मारते हैं, अपने जीवन को टाँटा बनाते हैं और जोते हुए भी आनन्द का जीवन नहीं भोगते। जो लोग बिना मिर्च-खटाई इत्यादि के भोजन नहीं करते, बिना चाय और क़ह्वे के शरीर में उत्तेजना का अनुभव नहीं करते, धूम्रपान के बिना नहीं रह सकते, उनके लिए दीर्घ जीवन का द्वार सदैव ही बन्द रहता है। सादा भोजन और सादा जीवन मनुष्य की आयु को १००, १२५, १५० वर्ष

तक बढ़ा सकते हैं । एक दीर्घजीवी मनुष्य के बारे में कहते हैं—

“ वृद्ध टामस पार जो इंग्लैंड के वेस्ट मिनिस्टर एवी नाम के गिरजा घर में विश्राम कर रहा है, १४६ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुआ । उसकी मृत्यु से थोड़े दिन पहले जब डाक्टरों ने उसकी परीक्षा की तब कहते हैं कि उसकी आरोग्यता बिल्कुल ठीक थी । जिस डाक्टर ने उसकी परीक्षा की उसने कहा कि कोई भी कारण नहीं है कि वह १० अथवा २० वर्ष तक और न जोषित रहे । अभाग्यवश वह राजदरबार में सम्मिलित हो गया । एक वर्ष तक इस प्रकार का जीवन व्यतीत करते ही उसकी मृत्यु हो गई । सारा जीवन उसका सादा था । न तो वह धूम्रपान करता था, न मदिरा पीता था और अधिकतर वह निरामिष भोजन करता था । राजसी भोजन ने उसका मार डाला । ”

सादा जीवन व्यतीत करना अधिकतर सादा भोजन करने पर निर्भर रहता है । कहते हैं, जितने मनुष्य भोजन से मरते हैं उतना बिना भोजन के नहीं मरते । सादे भोजन से यह अर्थ नहीं कि भोजन निकृष्ट हो, अथवा उसमें शरीर के पोषण करने का अंश न हो । भोजन उत्तम होना चाहिए न कि खटाई और मिर्ची से भरा हुआ । हेनरी फोर्ड जा संसार में अपने मोटरों के कारण प्रसिद्ध हैं, कहते हैं कि हमका दीर्घजीवी बनने के लिए अच्छे भोजन की आवश्यकता है, न कि अधिक भोजन की । कढ़वा, चाय, तम्बाकू, मदिरा इत्यादि हेनरी फोर्ड के शब्दों में दीर्घ जीवन

प्राप्त करने में हानिकारक हैं। वे भविष्य वाणी करते हैं कि भविष्य में मनुष्य इन वस्तुओं का प्रयोग बिलकुल छोड़ देगा।

अच्छा भोजन मिलने पर यह नहीं कि चाहे जितना खा जाना चाहिये। बल्कि जितनी भूख हो अथवा जितनी पाचन-शक्ति हो उतना ही खाना चाहिए। पचने के पश्चात् जो बच जाय उसको शरीर में से चाहे जैसे हो निकाल डालना चाहिए। आरोग्य और दीर्घ जीवन का यह सर्वश्रेष्ठ नियम है। एक डाक्टर कहते हैं कि “अपने पाचन-शक्ति और अपनी भूख दोनों को भले प्रकार ताल लो। इस प्रकार शरीर के अङ्ग अपना कार्य उचित रूप से करेंगे। २० घण्टे की शक्ति वाले इंजिन से ५० घण्टे की शक्ति की आशा न करो। तुम सदैव इस बात की शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करो कि अच्छे भोजन में से जितना सार तुम ग्रहण कर सकते हो, करो और पश्चात् जो बच जाय उसको पूर्ण रूप से शरीर के बाहर निकाल दो। कोई इंजिन तब तक भली भाँति कार्य नहीं कर सकता जब तक उसका प्रयोग में आया हुआ वाष्प पूर्ण रूप से बाहर न निकल सके।

जब भोजन भली भाँति चबाया जाता है, तभी वह जल्दी पचता है। इस लिए भोजन जल्दी जल्दी नहीं निगल जाना चाहिए, बल्कि धीरे धीरे चबाकर खाना चाहिए। इससे भोजन शीघ्र पच जायगा। जब पच जाय तब उसके पश्चात् जो शेष रहे उसको किसी न किसी प्रकार शरीर से बाहर निकाल देना चाहिए। इसके लिए कुछ लोग चूर्ण आदि का प्रयोग करते हैं ;

परन्तु उनसे प्रथम तो कुछ लाभ हाता है फिर उल्टी हानि होने लगती है। इस लिए जब अपच हो गया हो अथवा पेट में कुछ मल इकट्ठा हुआ प्रतीत हो तब उसके लिए सब से उत्तम आंशधि 'लंघन' अर्थात् व्रत है। दीर्घ और सुखी जीवन प्राप्त करने के लिए सब से सुन्दर और सस्ता नियम सादा जीवन व्यतीत करना है। इसमें न कुछ अधिक व्यय हाता है और न किसी अस्वाभाविक आवश्यकता की अपूर्ति से दुःख। इसलिए सब लोगों को चाहिए कि सादा जीवन व्यतीत करें। सादा जीवन व्यतीत करने वाले जिन सज्जनों से मेरा परिचय है उनमें से दो के चरित बड़े रोचक हैं, उनका कुछ अंश यहाँ देने के लिए बड़ा प्रलोभन हो रहा है।

मेरे पड़ोस में एक वृद्ध पुरुष रहते हैं, जो फलित ज्योतिष पर पहले बड़ा विश्वास रखते थे। वे कहते हैं कि एक ज्योतिषी ने अधिक से अधिक मेरी आयु ५४ वर्ष निर्धारित की। जब ५४ वर्ष की आयु हो गई तब उन्होंने अपना जन्मपत्र एक दूसरे ज्योतिषी को दिखलाया। उसने उनकी आयु ५८ वर्ष से अधिक नहीं निश्चय की। इसी प्रकार एक और ६२ वर्ष। परन्तु ये सज्जन अब ६६ वर्ष की आयु भोग रहे हैं। उनकी सारी इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य उचित रूप से कर रही हैं। उनका भोजन प्रति दिन दो सेर गाय का दूध, प्रातःकाल ४, ५ रोटियाँ और सायंकाल ४ रोटियाँ हैं। अपनी इस उत्तम आरोग्यता का कारण वे बतलाते हैं कि उन्होंने कभी मिर्च, तेल, खटाई और गुड़ नहीं खाया। धूपपान इत्यादि तो उनके पास तक नहीं फटकता। यही कारण

है कि वे प्रीति-भोजों तक में नहीं सम्मिलित होते। समय पर भोजन करते हैं। अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करने ही से उन्होंने ऐसी सुन्दर आरोग्यता प्राप्त की है।

एक और ऐसे ही दीर्घजीवी सज्जन हैं, जो इस समय ८५ वर्ष के हैं। वे अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं, समाचार-पत्र पढ़ लेते हैं और मील डेढ़ मील टहल भी आते हैं। वे भी मिर्च, तेल, खटाई इत्यादि का प्रयोग नहीं करते। अन्न के अतिरिक्त ११ सेर दूध पचा लेते हैं। वे आरोग्यता के लिए एक मन्त्र बतलाते हैं, वह यह कि 'सर्वरोगे मलाश्रये'। इस लिए जिस प्रकार हाँ, शरीर के भीतर से मल को निकाल देना चाहिए। मल को दूर करने के लिए वे एक ऐसी ओषधि का प्रयोग करते हैं जो न तो पृथ्वी में उत्पन्न होती है न आकाश में, न उसमें कोई गुण है और न उसका कोई आकार। वह ओषधि उपवास है।

इस लिए सादा जीवन और उच्च विचार ही मनुष्य को दीर्घ जीवी और सुखी बना सकते हैं।

—वक्खन बाल गर्ग

अभ्यास

- १—बहुत दिन जीना तुमको पसन्द है? यदि पसन्द है तो अपना जीवन कैसा बनाओगे? किन किन वस्तुओं को परित्याग कर दोगे? दीर्घजीवी और सुखी रहने का मूलमन्त्र क्या है?
- २—सादे जीवन से तुम क्या समझते हो?
- ३—युक्ताहार-विहार का क्या आशय है?

७-प्रशस्त-पाठ

शुभ सत्य सनातन धर्म वही
 जिसमें मत पन्थ अनेक नहीं ।
 बल-वर्द्धक वेद वही जिस में
 उपदेश अनर्थक एक नहीं ॥
 सुख-मूल समाधि वही जिसमें
 व्रत-बन्धन की कुछ टेक नहीं ।
 कवि शङ्कर बुद्धि विशुद्ध वही
 जिस के मन में अविवेक नहीं ॥ १ ॥
 गुरु गौरव-हीन कुचाल चलें
 मत-भेद प्रचार प्रपञ्च रचें ।
 दिन रात मनो मुख मूढ़ लड़ें
 चहु ओर घने घमसान मर्चें ॥
 व्रत-साधन के मिस पाप करें
 हठ छोड़ न हाय लम्बार लचें ।
 कवि शङ्कर मोह-महासुर से
 विरले जन पाय विवेक बर्चें ॥ २ ॥
 तन सुन्दर रोग-विहीन रहै
 मन त्याग उमंग उदास न हो ।
 रसना पर धर्म-प्रसङ्ग बसें
 नर-मण्डल में उपवास न हो ॥

धन की महिमा भरपूर मिले
 रस-रङ्ग वियुक्त विलास न हो ।
 कवि शङ्कर ये सब सङ्कट हैं
 सुखदा प्रतिभा यदि पास न हो ॥ ३ ॥

निशि वासर भोग विलास किये
 रस रंग भरे सब साज बने ।
 सिर धार किरीट कृपाण गही
 अवनी भर के अधिराज बने ॥
 अनुकूल अखण्ड प्रताप रहा
 अविरोद्ध अनेक समाज बने ।
 कवि शङ्कर वैभव ज्ञान बिना
 भव सागर के न जहाज बनें ॥ ४ ॥

कब कौन अगाध पयोनिधि के
 उस पार गया जलयात्रा बिना ।
 मिल प्राण अमान उदान रहैं
 न समान विमिश्रित व्यान बिना ॥
 कहिए ध्रुव ध्रुव मिला किसको,
 अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना ।
 कवि शङ्कर मुक्ति मिली न कहीं ।
 सुखमूल विवेकज ज्ञान बिना ॥ ५ ॥

अभ्यास

१—२, ३, ४, ५, छन्दों के अर्थ लिखो ।

२—इन शब्दों के अर्थ लिखो :—

अपान, उदान, विवेकज, जलयान, रस-वियुक्त, उपहास,
कृपाण, प्रतिभा, लवार, प्रसार ।

३—इन समासों के नाम लिखो :—

बल-बद्धक, व्रत-बन्धन, सुख-मूल, रोग-विहीन, गौरव-हीन,
रस-रञ्ज, वियुक्त ।

४—कौन कौन से गुण धारण करने से मनुष्य भवसागर के पार जा
सकता है ? किन दुर्गुणों से बचना चाहिए ?

८—अमरकण्टक

भारत की नदियों में से सात बहुत प्रसिद्ध हैं—गङ्गा, यमुना,
सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी । इसीसे धार्मिक
हिन्दू, स्नान करते समय यह श्लोक पढ़ते और इन सभी नदियों
के जल का स्मरण या आवाहन करते हैं—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती ।

नर्मदे सिन्धु-कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥

इनमें से सरस्वती का लोप हो गया । बाकी छः नदियाँ
अब तक विद्यमान हैं और पूर्ववत् ही पवित्र मानी जाती हैं ।

इस तरह, उत्तरी-भारत में, गङ्गा और यमुना के सदृश नर्मदा
की भी बड़ी महिमा है । साधु-जन उसकी प्रदक्षिणा करते हैं । वे

उसके उद्गम-स्थान से चलते और जहाँ पर वह समुद्र में गिरती है वहाँ तक चले जाते हैं। वहाँ से वे उसके दूसरे तट से प्रदक्षिणा करते हुए फिर उसके उद्गम-स्थान, अर्थात् अमरकण्टक, को लौट आते हैं।

नर्मदा बहुत बड़ी नदी है। वह भारत को दो भागों में बाँटती है। वह उसके प्रायः बीचो बीच में है। उसके तट पर कई नगर और कितने ही रमणीक स्थान, घाट और मन्दिर हैं। घाटों में भेड़ाघाट बहुत प्रसिद्ध है। नर्मदा के ब्राह्मण या ब्रह्माण्ड-घाट पर एक बहुत बड़ा मेला भी लगता है। यह नदी अमरकण्टक नामक पार्वत्य प्रदेश से निकलती है। वही उसका उद्गम स्थान है। इस कारण वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है और हजारों मनुष्य वहाँ की यात्रा करते हैं। अभी तक यह स्थान धार्मिक दृष्टि ही से महत्व पूर्ण समझा जाता था। पर, जान पड़ता है, अब इसे ऐतिहासिक महत्व भी प्राप्त होने वाला है। क्योंकि कुछ समय से कुछ पुरातत्वज्ञ पण्डित, जी जान से इसे प्राचीन लङ्का द्वीप साबित करने की चेष्टा कर रहे हैं। तुलसीदास ने लिखा है :—

जां लाँघै सतयोजन सागर ।

करै सो राम काज नय-नागर ॥

वे समझते थे कि भारत और लङ्का के बीच के समुद्र की दूरी सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस है। पुरातत्वज्ञ इस बात को गणोड़बाज़ी बताते हैं और कहते हैं कि रामायण वाली लङ्का

इसी अमरकण्टक के पहाड़ पर कहीं बसी हुई थी। उन्होंने वहीं पर समुद्र भी ढूँढ़ निकाला है और रामायण के बन्दरों और भालुओं का भी पता लगा लिया है। यहाँ तक कि उस प्रान्त के असभ्य जङ्गली मनुष्यों की बोलियों के कुछ शब्दों तक का मिलान वाल्मीकि रामायण में आये हुए शब्दों से कर दिखाया है। नगरों, गाँवों, आश्रमों, अरण्यों और नदियों के नाम भी रामायण से ढूँढ़ ढूँढ़ कर उन्हें उधर ही अमरकण्टक के आस पास, अथवा वहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर भारतवर्ष ही में बता देने की कृपा भी उन्होंने की है। इस पुण्य-कार्य में कई पण्डित लगे हुए हैं। उन्हीं में मध्य-प्रदेश के पण्डितवर्य बाबू हीरालाल साहब भी हैं। आपके नाम और काम से कोई कोई पाठक भी शायद परिचित हों; आप काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के कोई बहुत बड़े कार्य-कर्तृत्व पद पर भी हैं। अस्तु, अमरकण्टक को ऐतिहासिक महत्ता मिले या न मिले, उसका संक्षिप्त परिचय ही तब तक सुन लीजिये।

बङ्गाल-नागपुर रेलवे की एक शाखा कटनी से बिलासपुर को गई है। उस पर पेंडर-रोड नामक एक स्टेशन है। उत्तरी भारत से आने वाले यात्रियों को वहीं उतरना पड़ता है। वहाँ से अमरकण्टक कोई १४ मील है। स्टेशन से अमरकण्टक तक का मार्ग है तो पहाड़ी और जङ्गली, पर कहीं कहीं हरे-भरे-खेत भी देखने को मिलते हैं। हाँ, जेठ वैशाख और आषाढ़ सावन में उनके दर्शन नहीं होते। वर्षा में अलबत्ते प्रायः सर्वत्र ही हरियाली

काई रहती है। मार्ग में कहीं कहीं साधु-सन्तों के कुटीर देखने योग्य हैं। प्राकृतिक दृश्यों का तो कहना ही क्या है। कहीं कोई नाला हहराता हुआ चला जा रहा है, कहीं पथरीली जगहों और चट्टानों से घरघराता हुआ पानी गिर रहा है, कहीं नीची जगहों में भरे हुए जलकुण्ड शोभा दे रहे हैं। ऊँचे ऊँचे जङ्गली पेड़ और सड़क के किनारे फूले हुए जंगली फूल अलग ही अपनी मनोरमता से पथिकों का चित्त चुरा लेते हैं। मार्ग में गाँव भी पड़ते हैं। उन में पथिकों के ठहरने के लिये धर्मशालाएँ भी, कहीं कहीं पर, बनी हुई हैं। एक नाले के किनारे तो आम के बड़े बड़े सैकड़ों वृक्ष दूर तक चले गये हैं। मतलब यह कि कुछ दूर तक तो मार्ग बहुत ही सुहावना है। पर जहाँ से पहाड़ी की चढ़ाई शुरू होती है वहाँ से पैदल चलने वाले पथिकों को कष्ट अवश्य होता है। हाँ, सवारी होने से यात्री आराम से अमरकण्टक पहुँच सकते हैं।

अमरकण्टक रीषा-राज्य में है। वहाँ राज्य के कई कर्मचारी रहते हैं। पहले यह स्थान बड़ा दुर्गम था, पर इसकी दुर्गमता अब धीरे धीरे कम होती जाती है। वहाँ अब सड़कें तक बन गई हैं। वे यद्यपि बहुत चौड़ी नहीं; तथापि आवागमन के सुभीते के लिये बहुत काफ़ी हैं। प्रधान सड़क के दोनों ओर कितने ही अच्छे अच्छे मन्दिर हैं। व्यापारियों की दुकानें भी अनेक हैं। खाने-पीने का सब सामान वहाँ मिल जाता है। चावल तो बहुत ही अच्छा मिलता है। घी दूध की भी कमी नहीं। अमर-

कण्टक के मन्दिरों में सायं-प्रातः दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ रहती है। जहाँ देखिये वहीं कोलाहल मच रहा है और आनन्दात्सव मनाया जा रहा है।

अमरकण्टक के आस पास बड़ा घोर जङ्गल है। परन्तु उनमें भी यत्र तत्र गोंड, भील आदि असभ्य आदमी रहते हैं। उनका रङ्ग काला-कलूटा है। वे सिर्फ एक लँगोटी पहनते हैं। और किसी कपड़े से वे सरोकार नहीं रखते।

अमरकण्टक का प्रधान पवित्र स्थान नर्मदा का कुण्ड और उसके पास ही सड़क पर ही नर्मदा जी का मन्दिर है। मन्दिर के सामने एक और भी प्रसिद्ध मन्दिर है। वह शिव जी का है। अपने उद्गम स्थान से निकलने के बाद नर्मदा का जल इसी कुण्ड में एकत्र होता है।

अमरकण्टक में देवालियों की कमी नहीं। महारानी अहल्या बाई की बनवाई हुई एक धर्मशाला भी वहाँ है। पर दुःख की बात है, वहाँ की कितनी ही इमारतें मन्दिर आदि खंडहर और उजड़ी हुई दशा में हैं। रियासत को उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये था। कम से कम जो इमारतें अब तक नहीं उजड़ीं उनकी देख भाल का प्रबन्ध यदि वह कर दे तो अमरकण्टक की महत्ता कुछ तो बनी रहे। इस ओर रियासत का ध्यान थोड़ा बहुत गया भी है। उसके प्रयत्न से अब वहाँ हर साल शिवरात्रि पर एक मेला लगने लगा है। उसमें दूर दूर से लोग आते हैं। दुकानदार भी उस समय वहाँ बाहर से पहुँचते हैं। अतएव कई रोज़ तक

खूब चहल-पहल रहती है। पेंडरा-रोड स्टेशन से अमरकण्टक तक पुलिस का पहरा रहता है और हर तरह की सवारियाँ मिलने का प्रबन्ध हो जाता है।

अमरकण्टक से कपिल-धारा ३ मील है। कोई ७० फुट ऊँचे पर्वत से नर्मदा की धारा, सीधी, वहाँ नीचे गिरती है। उसके गिरने का शब्द दूर दूर तक सुनाई पड़ता है। वह दृश्य बड़ा ही मनोहर है। उस स्थान के आस पास घोर जङ्गल है। उसमें सैकड़ों प्रकार के वन-पुष्प और लताएँ मन को मुग्ध कर लेती हैं। पास की पहाड़ी से कुछ ही दूरी पर कई छोटे छोटे गाँव हैं।

कपिल धारा से कोई एक मील आगे दूध-धारा है। वहाँ पर भी नर्मदा जी एक ऊँची पहाड़ी से नीचे गिरती है। पर वह पहाड़ी समतल भूमि से पन्द्रह बीस ही फुट ऊँची है। अतएव नर्मदा के प्रपात की वैसी गरज वहाँ नहीं जैसी कि कपिल-धारा में सुनने को मिलती है।

अमरकण्टक के पहाड़ों से नर्मदा ही नहीं निकलती सोन-भद्र नद भी उन्हीं से निकलता है। नर्मदा के उद्गम स्थान से वह उत्तर की ओर है। कोई ३ मील चलने पर मनुष्य वहाँ पहुँचता है। वहाँ अगल-बगल पहाड़ों की दो चोटियाँ हैं। बीच की जगह खाली है। वह एक घाटी सी मालूम होती है। इन्हीं पहाड़ियों में से एक के ऊपर से सोन की धारा नीचे गिरती है। और मौसमों में तो नहीं, पर वर्षा में यह धारा बड़ी माटी हो जाती

है और हहराती हुई नीचे आती है। उस समय उसका घनघोर शब्द बड़ा भयङ्कर मालूम होता है।

सोनभद्र से लगभग एक मील की दूरी पर एक अच्छा बगीचा है। उसे लोग नर्मदा जी की फुलवारी कहते हैं। इसी बगीचे से नर्मदा जी के मन्दिर में पूजा के लिये फूल जाया करते हैं। इसमें गुले-बकावली के अनेक वृक्ष हैं। फूल पीला होता है और सुनते हैं, नेत्र रंग के लिये लाभदायक है। ये फूल शायद अन्यत्र कहीं नहीं पाये जाते। पाठकों ने गुले-बकावली का किस्सा शायद पढ़ा होगा। कहा जाता है कि जिस दुरधिगम्य स्थानों और गुफाओं का वर्णन उसमें है वे यहीं पर थीं।

अमरकण्टक पार्वत्य प्रदेश है। वहाँ गरमी कम पड़ती है। अनेक प्राकृतिक दृश्य भी वहाँ देखने लायक हैं। बरसात के दिनों में वहाँ तक पहुँचने में कुछ कष्ट अवश्य होता है, क्योंकि नदी नाले बहुत बढ़ जाते हैं, पर और ऋतुओं में दर्शक आसानी से वहाँ पहुँच सकते हैं और वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों से अपना बहुत कुछ मनोरञ्जन कर सकते हैं।

—चक्रपाणि चतुर्वेदी

अभ्यास

१—अमरकण्टक का वर्णन करो।

२—शब्दार्थ लिखो—

यत्र-तत्र, दुरधिगम्य, पुरातत्वज्ञ, पण्डितवर्य, उद्गम-स्थान, मनोरञ्जन।

- ३—अमरकण्टक के पास जो घोर जङ्गल है उसमें कौन-सी जाति के लोग रहते हैं ? उनका वर्ण कैसा होता है ? और उनका पहनावा कैसा होता है ?
- ४—अमरकण्टक के दर्शनीय स्थान कौन कौन हैं ? नर्मदा जी की फुलवारी में कौन प्रसिद्ध पुष्प होता है उसका क्या गुण है ?
- ५—नर्मदा किस रियासत में है ? पुरातत्वज्ञ वहाँ क्या नई खोज कर रहे हैं ? अमरकण्टक का मार्ग नक्शे में देखो ?
- ६—अमरकण्टक जाते हुए जो पहाड़ी दृश्य देखने में आते हैं उनका वर्णन करो ।

६—अनाथ

(१)

देख कर ही है इन्हें होती बड़ी मन में व्यथा,
क्या न हैं ये देहधारी करुण-रस ही सर्वथा ?
हाय ! भर आता हृदय है और रुकता है गला,
इन अनाथों की कथा कैसे कहे कोई भला ?

(२)

इन अभागों के अभागे दृग भरे हैं नीर से,
वे दयामय के हृदय में चुभ रहे हैं तीर से ?
हा रहे चञ्चल व्यथा से ज्यों सरोज समीर से,
हैं किसी को खोजते मानो सतृष्ण अधीर से ?

(३)

जो दिलाती याद है इनके मरे मा-बाप की,
छाप सी इनके मलिन मुख पर लगी सन्ताप की ।

है बहुत ही साफ़ उसको देख सकते हैं सभी,
चन्द्रमा की कालिमा भी क्या भला छिपती कभी ?

(४)

चल बसे माता पिता इन बालकों को ढाँड़ के,
तज दिया इनको सभी ने प्रेम-बन्धन तोड़ के।
किन्तु ये दुख भोगने को हाय ! जीते रह गये,
निज दृगों के आँसुओं को नित्य पीते रह गये।

(५)

है न कुछ अवलम्ब इनको विश्व-पारावार में,
बह रहे हैं तृण-सदृश उसकी प्रखरतर धार में ?
दुध-मुँहे बच्चे कहाँ ये और वे लहरें कहाँ,
इस दशा में ये न जाने जी रहे कैसे यहाँ ?

(६)

ये अभागे जन्म से ही दुःख के पाले पड़े,
देखिये सब अङ्ग इनके क्या न हैं काले पड़े ?
हैं भटकते रात-दिन हैं पैर में ढाले पड़े,
हाय ! तो भी अन्न के रहते इन्हें लाले पड़े ?

(७)

निपट नन्हें अङ्ग इनके सुमन से सुकुमार हैं,
हैं निरे नादान ये सब तौर से लाचार हैं,
किन्तु इनके शीश पर गिरि-तुल्य दुख का भार है।
दुष्ट निर्दय दैव को धिक्कार है, धिक्कार है ॥

(८)

हैं नसीब हुआ कभी न इन्हें खुशी से खेलना,
बालपन में ही पड़ा इनको विषय दुख भेलना ।
अधखिले ही जब रहे सुन्दर सुमन कोमल निरे,
हाय ! उन पर व्याम से आकर तभी आले गिरे ।

(९)

मौज से खाना थिरकना कूदना हँसना सदा,
इन अभागों को कभी इस जन्म में न रहा बदा ।
लोग कहते हैं किसे सुख, यह न इनको ज्ञात है,
पेट का ही पीटना इनके लिये दिन रात है ?

(१०)

सह चुके हैं क्लेश ये अब तक कठिन जितने यहाँ,
दिघस इनकी आयु के बीते अभी उतने कहाँ ?
है नहीं जाना इन्होंने निज पिता के प्यार को,
प्रेम से परिपूर्ण माता के मृदुल व्यवहार को ?

(११)

है मिला बालक सुलभ-सुख का न इनको लेश भी,
हाय ! इनके क्लेश को है कह न सकता शेष भी ।
क्या भला है भेद इनमें और उन मृदु फूल में,
जा लता की गोद से गिर कर पड़े हैं धूल में ?

(१२)

और बच्चे हैं मुदित मा के प्रचुर चुमकार से,
हैं दुखी निष्ठुर जनों के ये निष्ठुर दुतकार से ।

हर्ष से हँस कर उधर वे पीटते हैं तालियाँ ।
पीटते निज माथ हैं खाकर इधर वे गालियाँ ॥

(१३)

क्या कभी मिलता इन्हें भर पेट खाने के लिये,
छुटपटाते प्राण इनके त्राण पाने के लिये ।
ये भले ही कुछ करें निज दुख हटाने के लिये,
पर न यह भूलें कभी वे हैं न जाने के लिये ॥

(१४)

पड़ रहा जाड़ा कड़ा है, ये निपट पटहीन हैं,
वस्त्र लायें ये कहाँ से हाय ! ये अति दीन हैं ?
पवन-कम्पित मृदुलता सी कँप रही सब देह है,
लें शरण जाकर कहाँ इनके न कोई नेह है ॥

(१५)

यह कठोर मही इन्हें है सेज सोने के लिये,
हाय ! सोने के लिए है या कि राने के लिये ।
लोटने से धूल पर मिलती नहीं क्या शान्ति है,
शान्ति तो मिलती नहीं क्या दूर हाँती शान्ति है ?

(१६)

क्या इन्हें लू की लपट है, क्या कड़ी बरसात है,
क्या शिशिर का शीत इनको क्या भयङ्कर रात है ।
हों न क्यों ओले बरसते पर करें ये हाय ! क्या ?
भीख माँगे जो न जाकर तो मरें निरुपाय क्या ?

(१७)

मांगने में भीख इनका क्या भला अब लाज है,
याचना को छोड़ इनको क्या सहारा आज है ?
आत्म-गौरव-भाष इनके कर चुका विधि चूर है,
किन्तु तो भी वह न इनके क्लेश करता दूर है ॥

(१८)

जब अनाथ अभाग्यवश होता कभी बीमार है,
तब कहे किससे, किसे उससे तनिक भी प्यार है ?
कौन औषधि दे दया कर जो उसे दरकार है,
रोग अपना आप ही करता उचित उपचार है ॥

(१९)

क्या न इनको देखकर दृग फेर लेते हैं सभी,
दृष्टि इन पर प्रेम की क्या डालता कोई कभी ?
सान्त्वना भी शोक में देता इन्हें कोई नहीं ॥
है न इनके आँसुओं का पोंछने वाला कहीं ॥

(२०)

रह गया कोई न इनका ये किसे अपना कहें ?
अब भला संसार में किसके सहारे ये रहें ?
तज चुके सब साथ इनका ये नितान्त अनाथ हैं,
है भरोसा बस उन्हीं का जो सभी के नाथ हैं ॥

—गोपाल शरण सिंह

अभ्यास

१—अनार्थों के लिये तुम्हारे यहाँ क्या प्रबन्ध किया गया है ?

२—शब्दार्थ लिखो—

श्रान्त, पवन-कम्पित, सतृष्ण, सुमन, गिरी-तुल्य, सरोज, समीर, प्रखरतर ।

३—समासों के नाम लिखो—

पवन-कम्पित, बालक-सुलभ-सुख, रात-दिन, माता-पिता ।

४—वाक्यों में प्रयोग करो —

विषम, कालिमा, त्राण, निरुपाय, नितान्त ।

५—अपनी दशा से अनार्थों की दशा की तुलना करो, फिर सोचो कि अनार्थों के साथ तुम्हारा क्या कर्तव्य है ?

१०—सम्भाषण में शिष्टाचार

मनुष्य की विद्या, बुद्धि, और स्वभाव का पता उसकी बातचीत से लग जाता है, इसलिये उसे अपने विचार प्रकट करने के लिये बातचीत में बड़ी सावधानी रखना चाहिये। सम्भाषण में सावधानी की आवश्यकता इसलिये भी है कि बहुधा बात ही बात में कर्ष बढ़ आती है। यथार्थ में मनुष्य की बातचीत ही उनके कार्यों की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किसी कवि ने कहा है—‘कहैं कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बेलिबो न सीखो सब सीखो गयो धूल में।’ जिसकी

बात-चीत में सभ्यता वा शिष्टाचार का अभाव रहता है उससे लोग बात-चीत करना नहीं चाहते ।

सम्भाषण करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुरूप 'तुम' 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिये । इनमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है । 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थिति के लोगों के लिये या अधिक घनिष्ठ परिचय वाले समवयस्क के लिए, और श्रीमान् का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महानुभावों के लिए किया जाय । बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़ कर और किसी के लिये 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं । किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं' के लिए केवल सिर हिलाना असभ्यता है । उसके बदले 'जी हाँ' या 'जी' नहीं कहने की बड़ी आवश्यकता है । बातचीत इस प्रकार रुक रुक कर न की जाय कि जिससे श्रोता को उकताहट मालूम पड़ने लगे । बातचीत करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बोलने वाला बहुत दूर तक अपनी ही बात न सुनाता रहे, जिससे दूसरों को बोलने का अवसर न मिले और वे बोलने वाले की बक बक से ऊब न जाय । बातचीत बहुधा संवाद के रूप में होनी चाहिये, जिससे श्रोता और वक्ता—दोनों का अनुराग सम्भाषण में बना रहे ।

सभ्य वार्तालाप में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि किसी के जी को दुखाने वाली कोई बात न कही जाय । सम्भाषण

को, जहाँ तक हो सके, कटाक्ष, आक्षेप, व्यङ्ग्य, उपालम्भ और अश्लीलता से मुक्त रखना चाहिए। अधिकार की अहम्मन्यता में भी किसी के लिये कटु शब्द का प्रयोग करना अपने को असभ्य सिद्ध करना है। किसी नये व्यक्ति के विषय में परिचय प्राप्त करने के लिये बातचीत में उत्सुकता न प्रकट की जाय और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो किसी की जाति, वेतन, वंशावली, वय आदि न पूछा जाय। किसी से कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना उचित नहीं। यदि कोई सज्जन आपका प्रश्न सुन कर भी उसका उत्तर न दे तो उसके लिए उनसे अधिक आग्रह न करना चाहिये। यदि ऐसा जान पड़े कि वे उत्तर देना भूल गये हैं तो अवश्य ही नम्रता-पूर्वक दूसरी बार उनसे प्रश्न किया जाय।

बात-चीत में आत्म-प्रशंसा को यथा-सम्भव दूर रखना चाहिए। साथ ही बातचीत का ढंग भी ऐसा न हो कि श्रोता को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बात-चीत में विनाद बहुत ही आनन्द लाता है ; परन्तु सदैव हँसी-ठट्ठा करने की देव धक्का और श्रोता दोनों के लिए हानिकारक है। सम्भाषण में उपमा और रूपक का प्रयोग भी बड़ी सावधानी से किया जाय क्योंकि इसमें बहुधा अनर्थ हो जाने का डर रहता है। यदि वार्तालाप करते समय कवियों के छोटे छोटे पद्यों और कहावतों का उपयोग किया जाय तो इनसे बोलचाल में सरलता और सा० सो० द्वि०—४

प्रामाणिकता आजाती है। तथापि 'अति सब की बुरी होती है'।

यदि कोई दां-चार सज्जन इकट्ठे किसी विषय पर बात-चीत कर रहे हों तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही बात-चीत करने लगना अनुचित है। कभी कभी किसी किसी मनुष्य का चुपचाप देख कर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह करते हैं। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य का कर्तव्य है कि वह कोई मनोरञ्जक बात या विषय छेड़ कर उनकी इच्छा-पूर्ति करे।

किसी की असम्भव बातें सुन कर भी उसकी हाँ में हाँ मिलाना चापलूसी है और न्याय-सङ्गत बातें सुन कर भी उनका खण्डन करना दुराग्रह है। लोगों को इन दोषों से बचना चाहिए। यद्यपि वार्तालाप में दूसरे के मत का समर्थन करने से अथवा उसकी प्रशंसा में दां-चार शब्द कहने में चापलूसी का कुछ आभास रहता है; तथापि इतनी 'चापलूसी' के बिना सम्भाषण नीरस और अप्रिय हो जाता है।

इसी प्रकार अपने मत का समर्थन करने और दूसरे के मत का खण्डन करने में कुछ न कुछ दुराग्रह भूलकता है, तो भी इतना दुराग्रह सभ्य और शिक्षित समाज में क्षन्तव्य है। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निन्दा करना शिष्टता के विरुद्ध है और पर-निन्दक को सभ्य तथा शिक्षित लोग बहुधा अनादर की दृष्टि से देखते हैं। विद्वानों के समाज में मत-भेद होने के

अनेक कारण उपस्थित होते हैं, इसलिये जब किसी के मत का खण्डन करने का अवसर आवे तब बहुत ही नम्रता-पूर्वक और क्षमा-प्रार्थना करके उस मत का खण्डन करना चाहिये। खण्डन भी ऐसी चतुराई से किया जाय कि विरुद्ध मत वाले को घुरा न लगे। बातचीत में क्रोध के आवेश को रोकना चाहिये और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन धारण ही उचित है। वचनों का उत्तर व्यङ्ग्य से ही देना नीति की दृष्टि से अनुचित नहीं है; तथापि शिष्टाचार उन्हें कम से कम एक बार सहन करने का परामर्श देता है।

जिससे बातचीत की जाती है उसकी योग्यता का विचार करके वर्णनात्मक अथवा विचारात्मक विषय पर सम्भाषण किया जाय। नवयुवकों से वेदान्त की चर्चा करना और वयावृद्ध लोगों को शृङ्गार रस की विशेषतायें बताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुए किसी स्त्री से (विशेषकर दूसरे घर की स्त्री से) बात-चीत करना अशिष्ट समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी विचारात्मक कार्य में लगा हो तो उसके पास ही जोर जोर से बात न करना चाहिये। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना उसके लिये हानिकारक है और इससे उसके रोग की भयङ्करता का उल्लेख करना रोग से अधिक भयानक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धो को निन्दा की जा रही हो तो निन्दक को नम्रता-पूर्वक इस कार्य से विरत

कर देना चाहिये । और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव निन्दक पर न पड़े तो किसी बहाने उसके पास से उठ कर चले आना उचित है । इससे उसे अपनी मूर्खता और आपकी अप्रसन्नता का कुछ आभास हो जायगा । जो मनुष्य स्वयं अकारण दूसरे की निन्दा नहीं करता उसके सामने दूसरों को भी ऐसी निन्दा करने का साहस बहुधा नहीं होता ।

किसी सभा-समाज या जमाव में अपने मित्र अथवा परिचित व्यक्ति से ऐसी भाषा का अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न करना चाहिये जिन्हें दूसरे न समझ सकें अथवा जो उन्हें विचित्र जान पड़े । ऐसे अवसर पर किसी विशेष विषय की अपने ही धन्य या नौकरी की बातें करने से दूसरों लोगों को अरुचि उत्पन्न हो सकती है । यदि किसी विशेष अथवा गहन विषय पर बहुत समय तक सम्भाषण करने की आवश्यकता न हो तो थोड़े थोड़े समय के अन्तर पर विषय को बदल देना अनुचित न होगा ।

बातचीत करते समय भाषा की उपयोगिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है । कई लोग साधारण पढ़े लिखे लोगों के साथ बातचीत करने में, 'विचार-स्वातन्त्र्य', 'व्यक्तिगत आक्षेप', 'वैयक्तिक धारणा' आदि शब्दों का उपयोग करते हैं, जो साधारण पढ़े लिखे लोगों की समझ में नहीं आ सकते । इसी प्रकार पण्डितों के समाज में मनुष्य के लिए 'मानस', माता के लिये

‘ महतारी ’, पिता के लिये ‘ बाप ’ और भोजन के लिए ‘ खाना ’ कहना असङ्गत है ।

हिन्दी-भाषी लोग बहुधा श, ष और क्ष का अशुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रसिद्ध हैं । इसलिये शिक्तित लोगों को इस उच्चारण-दोष से बचना चाहिये । कई ‘ उर्दू-दाँ ’ सज्जन अपनी बात-चीत में सिर को ‘ सर ’ आंगन को ‘ सहन ’, बजाज को ‘ बज्जाज ’ और कलम को ‘ कलम ’ कह कर अपनी भाषा-विज्ञता का परिचय देते हैं, जो शिक्तित हिन्दी-भाषी-समाज में उपहासयोग्य समझा जाता है । हमारे कई हिन्दी-भाषी भाई उर्दू-उच्चारण-शुद्धता के मोह में पड़ कर, हिन्दी के ‘ ज ’-वाले शब्दों में ‘ ज ’ की अशुद्ध झड़ी लगाते हैं और कदाचित् उसे अपनी उर्दू-दानी का प्रमाण समझते हैं । पर यह उनकी भूल है । क्योंकि ऐसा उच्चारण अशुद्ध होने के कारण दोनों भाषा-भाषियों द्वारा उपहास्यमान होता है । हमने उर्दू न जानने वाले एक वकील महाशय को ‘ ज़ायदाद ’ मज़बूर ’ ‘ हर्ज़ ’ और ‘ ताज़ कहते सुना है । कई एक महाशय तो मुझे ‘ ज़ल्दी ’ घर जाना है, कह कर वकील साहब को भी मात कर देते हैं । यद्यपि हमने उपर्युक्त वकील साहब की शिष्टता के अनु-रोध से उस समय उनकी भूल नहीं बताई, पर हमें उनकी यथार्थ ‘ उर्दू-दानी ’ का पता चल गया । कई लोग भूल से हिन्दी के फ अक्षर को फ़ कहते हैं, जिसका उदाहरण उनके ‘ फल ’, ‘ फूल ’ और ‘ फन्दा ’ कहने में मिलता है ।

शिष्ट भाषण में इन दोषों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े उस भाषा के ज़, फ़, क़, और ग़ का उच्चारण करने का किसी को साहस न करना चाहिये। क्योंकि इससे शिक्षित-समाज में, विशेष कर शिक्षित मुसलमानों में, हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गर्व करते हैं और दूसरी जातियों के अशुद्ध उच्चारण की हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिये सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि उनके उर्दू-शब्दों का उच्चारण हिन्दी के प्रचलित अक्षरों में किया जाय। हिन्दी-लिपि में (उर्दू के संसर्ग से) अक्षरों के नीचे जो बिन्दी लगाने की अनियत प्रथा है उसी से उच्चारण-सम्बन्धनी ये सब भूलें होती हैं।

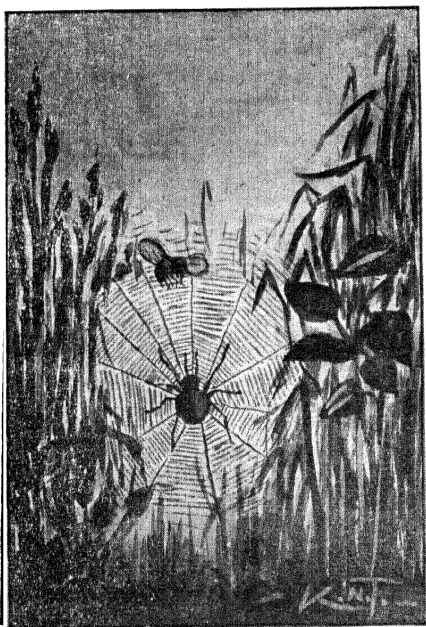
मातृभाषा में बातचीत करते समय बीच बीच में अँगरेज़ी-शब्दों को मिला कर एक प्रकार की खिचड़ी-भाषा बोलने की जो दूषित प्रथा है उसका तो सर्वथा त्याग किया जाना चाहिये। भारत वर्ष में इस खिचड़ी-सम्भाषण-प्रथा का तो इतना प्रचार है कि कदाचित् ही कोई प्रान्त इसके आधिपत्य से बचा हो।

इसी प्रकार मातृभाषा में ऐसे प्रान्तीय शब्द भी न लाये जायें जो या तो बिल्कुल भेदसे हों या दूसरे प्रान्त वाले जिन्हें समझ न सकें। बिना किसी कारण के अपनी मातृभाषा को छोड़ अन्य भाषा में बातचीत करना शिष्टता के विरुद्ध है।

—कामताप्रसाद गुरु

अभ्यास

- १—बातचीत करने में सावधानी रखने की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?
- २—चापलूसी और दुराग्रह से क्या समझते हो ?



मकड़ी

३—सभ्य वार्तालाप किसे कहते हैं ?

४—कटाक्ष, आक्षेप, व्यङ्ग्य और उपालंभ से क्या समझते हो ?

५—बातचीत करते समय किन किन नियमों का ध्यान रखना चाहिये और क्यों ?

११-मकड़ी

मूर्ति यत्न की, प्रतिमा प्रण की,
 सहज सखी साहस की ।
 ध्रुव उपासिका आदि शक्ति की,
 नहीं दैव के बस की ।
 हम समझे, पुनि संयत मुख की,
 चाह छोड़ कर यश की ॥
 मकली कहती, छाया ही है,
 दैव क्रूर कर्कश की ॥
 प्राकृत परिकर बाँध कर,
 अड़ी अटल उत्साह से ।
 गिर गिर कर फिर चढ़ रही,
 रहे विघ्न हट राह से ॥१॥
 एक मात्र सुस्मृति अतीत की,
 तेरी कला दिलाती ।
 भूत भविष्य ज्योति भारत की,
 तू ही है बतलाती ॥

अभ्यास

- १—मकड़ी से तुमको क्या शिखा मिलती है ?
- २—मकड़ी की कौन सी अधम बात लोगों को त्याज्य है ?
- ३—दूसरे पद्य का अर्थ लिखो ।
- ४—भवपाश और मकड़ी के जाळे की तुलना करो ।
- ५—प्रभुरतिसूत्र, जालयुक्त, काल-कोठरी, सत्साहस, सुस्मृति और ध्रुव-रपासिका के समास लिखो ।

१२—अलसी

असली—तीसी का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन समय में आर्यों की निवास भूमि उत्तरी ध्रुव, कास्पियन सागर और फ़ारस की खाड़ी के पश्चिम में तीसी की खेती होती थी। आर्य लोग तीसी से तेल निकालने के अलावा उसके रेशे से वस्त्र भी तैयार करते थे। संभवतः इसलिए वेदों में “तौम्य” नाम का उल्लेख पाया जाता है। पाणिनि ने भी “अतसि स्त्रुत युभा लुभा”—का वर्णन किया है। ये तौम्य वस्त्र रेशमी वस्त्रों की बनिस्वत पवित्र माने जाते थे। संस्कृत में इसे युभा के अतिरिक्त प्रतसी, उभा और अतसी बोज भी कहते हैं, परन्तु आज कल की देशी भाषाओं में इसके विविध नाम हैं, जैसे, बिहारी और राजस्थानी में तीसी, हिन्दी में अलसी, मराठी में जौम, कर्नाटकी में असगे, और तेलगू में नवल्लपगसि चेट्टू कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे लिनसीड और फ्लेक्ससीड कहते हैं। परन्तु, लेटिन में

अभ्यास

- १—मकड़ी से तुमको क्या शिक्षा मिलती है ?
- २—मकड़ी की कौन सी अधम बात लोगों को त्याज्य है ?
- ३—दूसरे पद्य का अर्थ लिखो ।
- ४—भवपाश और मकड़ी के जाले की तुलना करो ।
- ५—प्रभुरतिसूत्र, जालयुक्त, काल-कोठरी, सरसाइस, सुस्मृति और ध्रुव-रपासिका के समास लिखो ।

१२—अलसी

असली—तीसी का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन समय में आर्यों की निवास भूमि उत्तरी ध्रुव, कास्पियन सागर और फ़ारस की खाड़ी के पश्चिम में तीसी की खेती होती थी। आर्य लोग तीसी से तेल निकालने के अलावा उसके रेशे से वस्त्र भी तैयार करते थे। संभवतः इसलिए वेदों में “क्षौम्य” नाम का उल्लेख पाया जाता है। पाणिनि ने भी “अतसि स्चुत युभा क्षुभा”—का वर्णन किया है। ये क्षौम्य वस्त्र रेशमी वस्त्रों की बनिस्वत पवित्र माने जाते थे। संस्कृत में इसे युभा के अतिरिक्त प्रतसी, उभा और अतसी बोज भी कहते हैं, परन्तु आज कल की देशी भाषाओं में इसके विविध नाम हैं, जैसे, बिहारी और राजस्थानी में तीसी, हिन्दी में अलसी, मराठी में जौस, कर्नाटकी में असगे, और तेलगू में नवल्लुपगसि चेट्टू कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे लिनसीड और फ्लेक्ससीड कहते हैं। परन्तु, लेटिन में

लीनीसेमीना. जर्मनी में लीनसेमन, फ्रांस में ग्रेंसडेलिन और स्पेन में लिनजासिमिएनटडेल लेनो कहते हैं।

तीसी के पौड़े के तने सूत की तरह पतले होते हैं। इनसे अत्यन्त कोमल शाखाएँ निकलती हैं। पत्तियाँ साधारणतः कम चौड़ी और प्रायः बिना डंठल की होती हैं। पुष्प अधिकतर खुले हुए नीले रंग के होते हैं। उनके कुन् पाँच हिस्से होते हैं।

इसलिए बीज कांष के दणपटल होते हैं। वनस्पति शास्त्र में इन बीजों को “मसूरीपत्र” बताया है। ये बीज नीले रंग से लेकर गहरे भूरे रंग तक भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। लेकिन आमतौर पर हलके भूरे रंग के होते हैं। यही व्यापारिक तीसी है। इसका पौदा वार्षिक है। बीस से चालीस इंच तक ऊँचा बढ़ता है। बीज भी एक शतांश से एक पंचमांश इंच तक लम्बे होते हैं। खेती की दृष्टि से तीसी के पौदों की कई किस्में हैं : उन में कम से कम दो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जैसे लिनम यूसी टटी सीमम, और लिनम हुमाइलमिल। पहली किस्म में सब प्रकार के छोटे बीज शामिल हैं और दूसरी में बड़े बीज हैं।

तीस की खेती अरजाइनटाइन, ब्रिटिश भारत, कनाडा, चीन, सर्बिया, मोरोक्को, रूमानिया, रूस, ट्यूनिस् में बहुतायत से होती है। आस्ट्रेलिया, वेल्जियम, बल्गेरिया, मिस्र, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, नेदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, पोलैंड, रूमानिया, स्पेन,

स्वीडन और संयुक्तराज्य में तीसी की आयात के साथ साथ उसकी पैदावार भी बढ़ रही है।

भारतवर्ष में पहले तेल और रेशा—दोनों के लिए तीसी की खेती होती थी। परन्तु रेशे का उद्योग नष्ट हो जाने से आज कल केवल तेल निकालने के लिए खेती होती है। अरजनटाइन में भी तेल के लिए खेती होती है।

यूनाइटेड स्टेट अमेरिका के उत्तरीय मैदानों की भी तीसी की पैदावार तेल के काम में आती है। पर योरोपियन देश में तेल के अतिरिक्त रेशे का उद्योग बहुत बड़ा है। इसलिए योरोप में तीसी का नाम फ्लेक्स सीड अधिक प्रचलित है।

तीसी हर किस्म की मिट्टी में बोयी जाती है। लेकिन मार और दुमट में बहुत अच्छी उपज होती है। जिस आबहवा और मिट्टी में गेहूँ पैदा होता है वही इसके लिए अच्छी है। अन्य देशों में तो तीसी की खेती किसी दूसरी फसल के साथ नहीं होती है। परन्तु, भारतवर्ष में इसे गेहूँ, चना, मटर, जौ और मसूर के साथ बांटे हैं। किसी खेत में इसे बराबर बांटे रहने से उसकी उर्वरा-शक्ति का नाश होता है। इतना ही नहीं पाँच छः वर्ष तक लगातार खेती होने के बाद फिर उस खेत में बीज बाने के तीन सप्ताह उपरांत पौदों का टिकान कठिन हो जाता है। इसलिए ज़मीन की उत्पादन-शक्ति बनाये रखने के लिए अन्य वस्तुओं की खेती करते रहना चाहिये। तीसी की खेती अत्यन्त आसान है। खेत के ढेले तोड़फोड़ कर बराबर कर दिये जाते हैं। ज़मीन

में बीज बोने के बहुत से तरीके हैं। अकेला बीज बोया जाय तो तीन या चार बार जांत कर हंगा से पढ़ा दिया जाता है। कहीं माला बाँस से बोया जाता है। कहीं जांतकर छीट दिया जाता है, बाद में हंगा से पढ़ा दिया जाता है। बीज को गहरे खेत में बोते हैं, लेकिन यह गहरा भी ज्यादा नहीं होता है। खेत की सारी गहराई भी बराबर होनी चाहिये। अमेरिकन कृषक भी बीज को बराबर करने के लिए हंगा फेरते हैं और खेतों में गहराई रखते हैं। यदि तीसी अकेली ही बोयी जाय तो गोबर की खाद दी जाती है। जब गेहूँ, मटर और मसूर के साथ बोयी जाती है तो उन्हीं की खाद से काम निकल आता है। रूस आदि देशों में तो पहले नये खेतों का चरागाह के लिये छोड़ देते हैं। दस पन्द्रह वर्ष तक उसमें वृक्ष उगते हैं। इसके बाद उन्हें काट कर जो ज़मीन साफ़ निकलती है, उसकी मिट्टी में फसल बहुत ही अच्छी होती है। इसके पौदों के लिये नाइट्रोजन अत्यधिक चाहिये। नमी मिट्टी में यह बहुतायत से मिलता है। खेतों में तिपतिया घास बोने से भी तीसी की फसल अच्छी होती है।

यूनाइटेड स्टेट में तीसी मई और जून में बोई जाती है। भारतवर्ष में यह रबी की फसल है और अगस्त से सितम्बर तक बोई जाती है। तीसी के बाने के समय गर्म और साधारण शुष्क हवा चाहिये, दो महीने के बाद भीगी गर्म हवा होनी चाहिये। इसके उपरांत पौदों के खिलने पर हवा में अधिक नमी की आवश्यकता है। इस समय बिना नमी की शुष्क हवा या

अत्यंत नमीदार हवा अथवा कोहरा होने से फसल मारी जाती है। तीसी जमीन में बोयी जाती है, अच्छी किस्म की तीसी पैदा होने के लिये ऐसी जमीन के अलावा मध्यम वर्षा हो, तेज गर्मी न पड़ती हो और पौदे की वृद्धि भी धीमी हो। सारांश यह है कि पौदों के बढ़ने के समय जमीन में बहुत ज्यादा नमी होने से, शाखाएँ कमजोर हो जाती हैं। इससे पौधों की वृद्धि मारी जाती है, और बीज बहुत छोटा होता है। उम्मी प्रकार अन्यंत सूखी जमीन में भी तनों से शाखाएँ निकलनी कठिन है। इसलिये ऐसी जमीन हानो चाहिये जिसमें अंकुर तुरंत ही विकसित हों। तीसी के पौदे के बीज सपाट अंडाकार और काले भूरे रंग के चम-चमाते हुए होते हैं। ये बीज एक सिरे पर तुंड-युक्त होते हैं। प्रत्येक बीज में तेल से आच्छादित गर्भकृन्न होता है, और उसमें सूक्ष्म मूल भी होता है। ये बीज स्निग्ध तहों से ढँके होते हैं। बीजों की तह का चिकनापन गरम फल को लसदार चिपचिपा कर देता है।

तीसी के बीज में सुग्गा नामक कीड़ा लगता है। यह एक प्रकार का रोग समझिये। इसी से तीसी की फसल नष्ट होती है। इसके दूर करने का सहज उपाय यह है कि तीसी के खेतों में अन्य वस्तुओं की खेती करनी चाहिए। इस प्रकार किसी खेत में लगातार तीसी की खेती न करने से कीड़े नहीं बढ़ पाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह भी बताया गया है कि तीसी को फारमल-डेहाइड के साथ जल में मिलाकर धोने से कीड़े मर जाते हैं। यह बात मानी हुई है कि तीसी का कोई भी बीज इस रोग से

मुक्त नहीं है। लेकिन फारमल डेहाइड कीड़ों को ज़मीन में प्रवेश करने के पूर्व ही मार डालती है। वैसे भी जब कभी इन कीड़ों के ग्रंथे पेड़ के पत्तों पर दिग्विध पड़ें तो उनका तोड़ कर फेंक देना चाहिये या जला देना चाहिए।

यूनाइटेड स्टेट के दक्षिण-पश्चिम देश की तीसी उत्तर-पश्चिम से भारी होती है। इसलिये यहाँ की तीसी में ३६ प्रति सैकड़ अधिक तेल निकलता है। प्रत्येक एकड़ में करीब एक बुशल के हिसाब से बीज बोये जाते हैं। खेतों में उगने वाले घास का कोई खास उपयोग नहीं होता है। आवश्यकता प्रतीत होने पर खेतों में सिंचाई भी की जाती है। यदि हो सके तो फूलने और जमने के समय सींचना चाहिए; नहीं तो नहीं। यदि खेत में ज्यादा घास उग गयी हो तो उसे एकबार निरा देना चाहिए। भारतवर्ष में बीज बाने की तादाद प्रत्येक बीघे में छः सेर से आठ सेर तक है। जिस तीसी से रेशा निकाला जाय उसकी फ़सल फूलों के गिरते ही तोड़नी चाहिए। अथवा तीसी की फ़सल बीजों के सारे पकने या कुछ भूरे होने पर काटी जाती है।

तीसी के रेशे वाले पौदे की पीड़ी से सूत व सन निकलता है। डंठल को घाम में डालकर—कूट कूट करके सन निकालते हैं। डंठल के भीतरी अंश—गूदे से बहुत बढ़िया रेशा निकलता है और ऊपरी भाग में केवल मोटा सन अर्थात् पटसन होता है। इस गूदे के उपयोग के लिए ही तीसी के पौदे जल्दी काटे जाते हैं। किसान रेशे के पौदों को बीज कोष के पकने के पहले ही तोड़ते

हैं। इस समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि सारे पौदों के डंठलों का दाँ तिहाई हिस्सा पीले रंग का होना चाहिए।

प्राचीन यूनान और रोम-निवासी कच्ची और पक्की तीसी को भोजन के लिए उपयोग करते थे। भारतवर्ष में आज भी सैकड़ों गरीब इस की रोटियाँ बनाकर अपना पेट भरते हैं। इसके अलावा इसका तेल रंगों के काम में लाया जाता है। रंग के उपयोग में तीसी के तेल का बहुत उपयोग होता है। खरी मवेशियों की खुराक है। तीसी की पुलटिश भी बनती है। यद्यपि तीसी के तेल की बड़ी खपत है; किन्तु अन्य उद्योगों की तरह तीसी से रेशा निकालने का उद्योग अत्यन्त आवश्यक है।

आजकल इस देश से तीसी का ही अधिक निर्यात होता है। तीसी का तेल बहुत ही थाड़ा तैयार हाता है। इसके अलावा तीसी से सन निकालने का उद्योग तो बिलकुल ही बन्द हो गया है। प्राचीन समय में भारतवर्ष में कपास का विशाल उद्योग रहने पर भी पटसन घस्त्रों का प्रचार कम नहीं था। लेकिन यदि अब हमने बहुत बड़े पैमाने पर व्यापारिक दृष्टि से तीसी से सन निकालने का उद्योग न किया तो कालांतर में हमारी पैदावार को बहुत बड़ी क्षति पहुँचेगी। इस महत्वपूर्ण उद्योग की रक्षा के लिए तीसी से सन निकालने के बड़े बड़े कारखाने खुलने चाहिए। भारतीय किसान तो गृहशिल्प के रूप में इस उद्योग को आरम्भ कर अपने गाँवों में ही बहुत बड़ी तादाद में सन निकाल सकते हैं। यूनाइटेड स्टेट में पहले तो तीसी से सन निकालने का उद्योग

बहुत बड़े पैमाने पर था ; लेकिन सन् १७६२ से सूती वस्त्रों का अधिक प्रचार होने से रेशे का उद्योग फिर नहीं रहा । इसलिए सन् १८१० में यूनाइटेड स्टेट के चौदह राज्यों में तीसी की खेती केवल तेल निकालने के लिए होने लगी । आरम्भ में केवल २८३ तीसी से तेल निकालने की मिलें थीं । उस समय उन में ४,००,००० बुशल से ज्यादा तीसी की खपत नहीं होती थी जो आजकल एक बड़ी मिल की खपत है । १८५० से यूनाइटेड में स्टेट में तेल निकालने के लिए अलसी भारतवर्ष से आने लगी । १८५० से १८६० तक आंडिया और केंट की मिलों की खपत की आधी पैदावार होने लगी । इस तीसी की पश्चिमीय मिलों में खपत हुई । पूर्वीय मिलें फिर भी बाहर से तीसी मँगाती रहीं । यूनाइटेड स्टेट में तीसी से तेल निकालने का उद्योग बढ़ता ही गया । सन् १८५० से १८७५ तक पच्चीस वर्षों के बीच में इतनी तेल की मिलें खुलीं कि तीसी का आयात दुगना हो गया । इस बीच में देश के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई । लेकिन यह पैदावार १८६२ तक इतनी काफी नहीं हुई कि पूर्वीय मिलों की सारी माँग पूरी हो सके । १८६२ के बाद तो तीसी का आयात बिलकुल घट गया । १८५० में ओहियो राज्य में सब से अधिक तीसी पैदा होती थी । १८६६ में इंडियाना और इलीनोस घनिष्ठ प्रतिद्वंदी थे । इसके बाद तो पश्चिमीय राज्य दो हिस्सों में विभाजित हो गये । उत्तर पश्चिमीय हिस्से में डेकोटा मिनेसोटा, ईषा, विसकानसिन और दक्षिण पश्चिमीय हिस्से में कनसस, मिसोटी, नेब्रासका, ओकलहना और इंडियाना राज्य थे ।

१९०२ में यूनाइटेड स्टेट की सारी पैदावार का ५३ प्रति सैकड़ा हिस्सा डेकोटा में पैदा होता था। इसके बाद केवल उत्तर पश्चिमीय राज्यों में सारी फसल की ६२ प्रति सैकड़ा तीसी पैदा होने लगी। इन राज्यों की तीसी तेल के लिए ज्यादा कीमती होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि डेकोटा में पहले ऊँचे दर्जे की तीसी पैदा होने लगी। कहा जाता है कि यह तीसी विदेश से लाकर बाँयी गयी।

हमें संसार की तीसी की पैदावार बड़े ध्यान से देखनी चाहिए। इससे कार्यात्मिक इप्रसिद्धि के अलावा अन्य देशों की औद्योगिक और कार्यात्मिक अवस्था का भी हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। अन्य देशों की फसल के विवरण हमें अपनी पैदावार बढ़ाने में पूर्ण सहायता देते हैं। अस्तु; तीसी की पैदावार में अधिक और औद्योगिक दृष्टि से उन्नति करने वाले यूनाइटेड स्टेट अमेरिका के राज्यों की फसल का विवरण पहले देखिये। अमेरिका का विवरण कैसा है उस सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। भारत में तीसी के व्यापार की गति अच्छी नहीं है। अमेरिका उन्नतिशील और धनी देश है। इसी से वहाँ तीसी का हर प्रकार का व्यापार होता है। अभी अमेरिका और भारत के तीसी के व्यापार में रुपया और चवन्नी का अन्तर है।

—जी० एस० पथिक

अभ्यास

१—प्राचीन काल में तीसी की खेती कौन लोग करते थे और किस अभिप्राय से ?

सा० सो० द्वि०—५

- २—आज कल किन किन देशों में किस काम के लिये तीसी की खेती होती है ?
- ३—भारतवर्ष में तीसी की खेती करने की क्यों बहुत आवश्यकता है ?
- ४—तीसी की खेती किस प्रकार की भूमि और आबहवा में हो सकती है ?
- ५—तीसी के नाम जा भिन्न भिन्न भाषाओं में तुमने पढ़े हैं लिखो ।

१३—ऊषे !

(१)

ऊषे, बता किस व्यक्ति ने निर्माण हाँ, तेरा किया ?
 वालार्क-सिन्दुर-बिन्दु तेरे भाल में किसने दिया ?
 सर्वप्रथम तेरा हुआ था जन्म कब संसार में ?
 किसने लिया निज गोद में सर्वाग्र तुझको प्यार में ?

(२)

सुख-शान्ति-युत कमनीय वह कैसा मनोहर-काल था ?
 आलोक-मय करता गगन तब कौन सा ग्रह-जाल था ?
 उस काल हँसते थे कुसुम, क्या थी सुकोकिल बोलती ?
 तेरे सुस्वागत हेतु तटिनी क्या विकल थी डोलती ?

(३)

प्रातः निकल निज गेह से करती अहो, जब तू गमन ,
नव-रश्मियों का मुकुट तेरे शीश रखता कौन जन ?
क्या तरल चपल समीर कर लाती यहाँ तुझको बहन ?
या ले तुझे निज अङ्ग में लाता त्वरित है श्याम-घन ?

(४)

ऊषे, यहाँ आती सदा तू बात किसकी मान कर ?
किसने दिया यह रूप तुझको दिव्य-तम क्या जान कर ?
तुमको कभी देखा नहीं सन्ताप में या शोक में ,
किस वस्तु को सब से अधिक तू चाहती है लोक में ?

(५)

वन बाग बीच बिखेरती बहु नित्य मुक्ता-माल तू ,
क्या तोड़ लाती मार्ग से निज मोतियों की डाल तू ?
किसने सरलता-मय दिया यह भाव तुझको त्याग का ?
किसने भरा तेरे हृदय में रङ्ग यह अनुराग का ?

(६)

ऊषे, भला, किस हेतु करती तू निरन्तर हास है ?
किसको रिझाने के लिए यह सरल भृकुटि-विलास है ?
कहती न कुछ बस, एक ही सी तू खड़ी है हँस रही ?
है जान पड़ता गेह से निज सीख कर आई यही ।

(७)

क्षण-काल ही के हेतु हे ऊषे, सकल तव साज हैं ।
चाञ्चल्य-पूरित बालिका के से सभी तव काज हैं ।

इन्द्रप्रभा सी रङ्गिणी ले शीघ्र तू आती यहाँ,
चपला सदृश बस चमक कर है लौट फिर जाती कहाँ ?

—मुकुटधर

अभ्यास

१—ऊषा से तुम क्या समझते हो ?

२—ऊषा का आगमन पहले किन देशों में होता है ?

३—बालार्क-सिन्दुर-विन्दु, मनोहर-भाल, नवरश्मि, श्यामघन में कौन कौन से समास हैं ?

४—दूसरे पद्य के अर्थ लिखो ।

५—‘ सृणु काल के हेतु ऊषे सकल तव साज हैं ’ के कहने से कवि का क्या अभिप्राय है ?

१४—वृत्त-चर प्राणी

साधारणतः विचार करने से यह प्रकट होता है कि विश्वात्मा ने सृष्टि को शोभान्वित करने के हेतु वृत्तों की उत्पत्ति की है । यदि वृत्त न उगते तो भू-मण्डल उदासीन और सूना जान पड़ता ; परन्तु बात इनमें ही नहीं है । वृत्त कवि के हृदय को भी विकसित करते और उस पर प्रफुल्ल प्रकृति के वसन्तोत्सव का आनन्द-मेह बरसाते हैं । वे चित्रकार की दृष्टि में नैसर्गिक कृपा प्रदर्शित करते हैं, सन्तप्त प्रेमियों को आश्वासन तथा भूखों को भोजन प्रदान करते हैं और पथिकों के शान्ति-निकेतन हैं । वे

देवताओं को नित्य नया शृङ्गार देते हैं। वे ईश्वर का गौरव प्रकट करते हैं। इन सबके अतिरिक्त वे अगणित प्राणियों के संसार भी हैं।

वसन्त-ऋतु में वृत्तों पर नाना प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति होती है। ग्रीष्म-ऋतु के आते ही उनकी शाखायें कीड़े-मकोड़ों का क्रीडा-स्थल बन जाती हैं। प्रातःकाल और सन्ध्या समय वहाँ अगणित प्राणियों की मधुर-ध्वनि होती रहती है। सारांश यह कि प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक काल में भूमते हुए वृत्त संसार पर आन्दोलन-पूर्ण साम्राज्य विद्यमान रखते हैं।

अब किसी जंगल के वृत्त-शिखर पर ध्यान दीजिए। वहाँ भी अद्भुत व्यापार हो रहा है। कीड़े-मकोड़े पत्ती और अन्य छोटे छोटे प्राणियों के अतिरिक्त वहाँ मनुष्य और हाथी के समान विशाल देहधारी प्राणियों की बस्ती है। ये प्राणी देखने में भयानक और अद्भुत हैं। इसी बस्ती में बसने वाले एक दो प्राणियों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार किया जाता है।

कई एक बातों पर विचार करने से यही कहना पड़ता है कि घनमानुष और बन्दर अत्यन्त चित्ताकर्षक प्राणी हैं। महत्त्व की श्रेणी में मनुष्य के बाद इन्हीं का दर्जा आता है। आश्चर्य तो यह है कि बिना वृत्त के इनकी जीवन-नौका सुरक्षित नहीं रह सकती। इनके शारीरिक गठन पर ध्यान देने से जान पड़ता है कि ईश्वर ने आजानुबाहु और तूल देह प्रदान करके इन घनचरों को वृत्त ही पर निवास करने योग्य बनाया है। ये प्राणी-भूमि पर चल तो

सकते हैं; परन्तु ये चतुष्पद थलचारी नहीं कहे जा सकते। यथार्थ में ये चतुर्बाहु वृक्ष-चर जन्तु हैं और हमें ऐसा ही कहना उचित भी होगा। इनका जीवन वृक्ष ही पर निर्भर है। वह इन्हें निवासस्थान और भोजन देता है। इसके अतिरिक्त आपत्ति-काल में इनकी रक्षा भी वही करता है।

मनुष्य के पैर में उसकी देह को संभालने, तोलने और उठाने की शक्ति है। इसी कारण जिस सहूलियत से मनुष्य भूमि पर चल फिर सकता है, वैसा पैर में पकड़ने की शक्ति न रहने से वह वृक्ष की पींड तथा उसकी डालों पर नहीं चढ़ सकता। परन्तु बन्दर और वनमानुष के पैर में देह के बोझ को संभालने की शक्ति नहीं होती। जब ये जन्तु पृथ्वी पर चलते फिरते हैं तब इनके पैर शरीर के बोझ से झुक जाते हैं। निस्सन्देह, इनके पैर में पकड़ने की अपूर्व शक्ति रहती है और इसी कारण इन्हें वृक्षों पर घूमना फिरना सहज जान पड़ता है।

हाँ प्रायः सब छोटे बड़े बन्दर अपने अपने वृक्षों से उतर कर जंगल में दूर दूर तक दौड़ लगाया करते हैं। परन्तु वनमानुष वैसा नहीं कर सकता। बन्दर की भाँति पृथ्वी पर दौड़ने में वनमानुष को उतना ही कष्ट होता है जितना कि मनुष्य की देहरूपी दो पाँव की गाड़ों को चतुष्पद जीवधारी के चार पाँव की तेज़ी से मुकाबिला करने में कष्ट होता है। सच तो यह है कि वनमानुष, बन्दरों के समान पृथ्वी पर चल नहीं सकता। और

यदि वह चले भी तो बन्दर की बराबरी नहीं कर सकता। यह देखा गया है कि वनमानुष पृथ्वी पर चलते समय अपने लम्बे लम्बे हाथ और लम्बी लम्बी उँगलियों से लाठी का काम लेता है और पीछे के दोनों पाँव यहाँ तक सिकोड़ लेता है कि उँगली के जाड़ भूमि को छूने लग जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि बहुतेरे मनुष्याकृति बन्दर पृथ्वी और वृत्त दोनों समान गति से चलते हुए देखे गये हैं।

इससे यह नहीं कहा जा सकता कि ये प्राणी अपने पूर्व-पुरुषों के निवास-स्थान से अलग किये जाने पर जीवित रह सकेंगे। यदि आज संसार भर के वृत्त काट दिये जायँ तो ये सब प्राणी एक एक करके कुछ ही दिनों में अवश्य नष्ट हो जायँगे। प्रथम तो ये भूमि पर रह ही नहीं सकेंगे। यदि रह भी गये तो भोजन की अड़चन आ उपस्थित होगी। हाँ, स्लोथ के समान इनकी गति नहीं हांगी।

स्लोथ एक वृत्त-चर प्राणी है। उसका डील-डौल हाथी के समान होता है। वह उसी प्रकार वृत्त पर उलटा लटका रहता है जैसा कि चमगीदड़। परन्तु उसमें खूबी यह होती है कि वह चमगीदड़ के समान वृत्त को छोड़ कर थोड़ी देर के लिये भी अन्यत्र नहीं जा सकता। और और वृत्त-चर प्राणी कम से कम पानी पीने के लिये वृत्त का परित्याग करते हैं। परन्तु स्लोथ पैदा होने के दिन से मरण समय तक वृत्त का आश्रय नहीं छोड़ता। खुले दिन में पत्तों के रस से बरसात में वृत्त की शाख पर बहते

हुए पानी से वह अपनी प्यास बुझाता है। कहने हैं कि यदि उक्त जीवधारी नीचे गिरा दिया जाय या उसका वृत्त जड़ से काट दिया जाय तो वह अवश्य ही मर जायगा। पृथ्वी पर सरक कर चलना उसके लिये वैसा ही असाध्य है जैसा कि सिंह के लिये वृत्त पर चढ़ना।

प्रायः ऐसा ही हाल चमगीदड़ और उड़ने वाली लोमड़ी का भी होता है। ध्यान रहे कि इन दोनों प्राणियों में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर है तो केवल डील-डौल का। यदि चमगीदड़ों का वृत्त काट दिया जाय तो सम्भव है कि वे कन्दराओं, सूने मकानों और मन्दिरों में जा बसेंगे और किसी न किसी प्रकार अपनी गुज़र-बसर कर लेंगे। परन्तु उड़ने वाली लोमड़ी का ऐसा हाल नहीं होता। वे कृत्रिम स्थान—घर, मन्दिर आदि—में रह ही नहीं सकते। उन्हें उलटा लटक कर विश्राम के लिये वृत्त अवश्य चाहिये। बन्दर के बच्चे के समान इनके भी बच्चे अपनी माँ के पङ्ख में चिपटे रहते हैं। यदि सब वृत्त काट दिये जायँ तो इनका घर और इनकी ज़िन्दगी दोनों नष्ट हो जायँ और इनके बालबच्चों का भी नाम निशान मिट जाय। सच तो यह है कि ये सारे प्राणी वृत्त ही पर सुखी रह सकते हैं।

एक बार एक वन्य-पशु निरीक्षक ने केमरून के जङ्गल में एक जवान वनमानुष को तीस चालीस फुट की लम्बी छलांग भरते हुए देखा था। छलांग भरने के लिये उस प्राणी को आहिस्ते से उछलते देख दर्शक को पहले ऐसा बोध

हुआ मानों वह सात-आठ फुट से अधिक दूर नहीं जा सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर ने इन मूल निवासियों को जो अपूर्व शक्ति प्रदान की है उसका मुख्य उद्देश्य यही है कि इन्हें वृत्त के उच्च शिखर पर से भूमि पर की छोटी छोटी झाड़ियों में आने जाने में सुगमता हो। कहने को तो यह ईश्वर की साधारण देनगी है; परन्तु इस देनगी की महत्ता उस समय जान पड़ती है जब चीता वनमानुष के बच्चों के निवास-कुञ्ज पर धावा करना है। ऐसे अवसर पर बच्चों का असाधारण कौशल और असीम साहस देखते ही बनता है। उसी निरीक्षक को जङ्गल में एक वनमानुष को लगभग सात फुट ऊँचा देख कर बड़ा ताज्जुब हुआ था। वह प्राणी क्षण भर में एक ऊँचे वृत्त के शिखर पर इस फुर्ती से जा चढ़ा कि दर्शक के अनिश्चित वहाँ जितने जङ्गली मनुष्य खड़े थे उन सब को उसके चढ़ने के ढंग पर विस्मय होने लगा।

इन जीवधारियों का मार्ग वृत्त की चाटियों के ऊपर से होता है। जब इनका कोई शत्रु इन्हें हानि पहुँचाने के लिये वृत्त पर चढ़ता है तब वे शीघ्रता से एक वृत्त की चाटी से दूसरे वृत्त की चाटी पर जा पहुँचते हैं। यदि वहाँ भी बचाव का कोई लक्षण न दीखा तो वे निकट के दूसरे वृत्त की चाटी की किसी मोटी शाखा को पकड़ कर यहाँ तक अपने नज़दीक खींच लाते हैं जिसमें उन्हें दूसरे वृत्त की चाटी पर जाने में सुगमता हो। इस उपाय से वे एक वृत्त की चाटी से दूसरे वृत्त की चाटी पर कूदते-फाँदते

चले जाते हैं। वृत्तों की चोटी को मार्ग बना कर सैर करना जितना आनन्ददायक होता है उससे अधिक भय भूमि पर गिरने और मृत्युमुख में पहुँच जाने का भी रहता है। परन्तु इन चतुर्बाहु वृत्तचरों को इस बात की थोड़ी भी परवाह नहीं रहती। वे कभी नीचे गिरते भी नहीं हैं।

वृत्तों पर घनमानुष के चलने फिरने का ढँग बड़ा अनाखा होना है। एक सीध में ऊपर की ओर दौड़ लगाते समय वे अपने आगे की दोनों प्रलम्ब बाहुओं को सिर की सीध में ऊपर उठाये रहते हैं। इससे भी अधिक उनकी कौतूहल-वर्धक और चमत्कार-पूर्ण चाल तब देखने में आती है जब वे वायु-मण्डल में तीस चालीस फुट की लम्बी क्लाँग भरते हुए आकाश वृत्त के सामानान्तर बड़ी दूर दूर की यात्रा करते हैं। ऐसी लम्बी यात्रा के समय मार्ग में उन्हें वृत्तों की शाखाओं का आश्रय लेना ही पड़ता है; परन्तु प्रशंसा की बात यह है कि वे उस पर पल भर के लिये भी विश्राम नहीं करते। हाँ, जब कभी वे चलते चलते अपने मार्ग से विचलित होकर कुछ नीचे आ जाते हैं तब वे अपनी राह पकड़ने के लिये हाथ आई हुई शाखा के ऊपर इस सफ़ाई और नज़ाकत से आ बैठते हैं जिसे देख 'हारीज़न्टल बार' पर कसरत करने वाला पहलवान भी दंग हो जाता है।

पहले लोगों का ऐसा अनुमान था कि घनमानुष अपने लिये घर नहीं बना सकता। वह किसी अन्य वृत्त-चर प्राणी के बने बनाये घर पर अधिकार कर लेता है और वहीं सकुटुम्ब जा

बसता है। परन्तु लन्दन के चिड़िया खाने से निकल भागने वाले वनमानुष के बच्चे ने लोगों के इस मिथ्या विश्वास पर पानी फेर दिया। ज्योंही वह जन्तु अपने पिंजरे से अलग हुआ त्योंही वह समीपस्थ सनोवर के वृत्त पर जा चढ़ा। इस समय बर्फ पड़ रही थी। अतः वह शीत से बचने के लिये पत्ते और टहनियों का घर बना कर उसमें जा बैठा। प्रातःकाल जब उसकी खोज की गई तब लोगों को उसका भेद प्रगट हुआ। कहते हैं कि उस वनमानुष का बनाया हुआ घर दर्शकों के अवलोकनार्थ एक सुरक्षित स्थान में रख दिया गया है। देखने में तो वह घर बड़ा बेंढंगा मालूम होता था, परन्तु था मज़बूत।

इन सब बातों से प्रगट होता है कि वृत्त वनमानुष का मार्ग है। उसमें लगने वाले मधुर फल उसके और उसके आश्रितों के खाद्य पदार्थ हैं। उसकी नरम नरम टहनी और चिकने पत्ते उसकी सन्तति के लिए गृह-निर्माण करने की सामग्री हैं। यहाँ यह भी बता देना अनुचित न होगा कि रात्रि में जब वनमानुष के बच्चे अपने घर में सोते रहते हैं तब उनका शूर पिता चौकसी करने के लिये उतर आता है और वृत्त-पाद से टिक कर चैतन्य बैठा रहता है।

यों तो वृत्त पर सभी प्रकार के बन्दरों की प्रबलता रहती है परन्तु स्पाइडर नामक बन्दर की प्रचण्डता देख कर यही कहना पड़ता है कि उसके समान वृत्त पर पूर्णतः अधिकार रखने वाला प्राणी वनमानुष के अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है। उसके

हाथ अङ्गुलीहीन होते हैं : परन्तु उसकी पूँछ शक्ति-शाली होती है और वह वैसा ही कार्य कर सकती है जैसा कि हाथ से किया जा सकता है। इस लिये यदि उसकी पूँछ का नाम पञ्चम बाहु रखवा जाय तो कुछ भी अनुचित न होगा। जिस प्रकार और दूसरे बन्दर वृक्ष पर अपने हाथ से लटक सकते हैं तथा झूल सकते हैं ठीक उसी भाँति वह भी अपनी पूँछ से लटक सकता है और झूल सकता है। इतना ही नहीं, वह उससे अपना भोजन भी संग्रह कर सकता है। हनुमान जी ने कपटी कालनेमि का वध उसे पूँछ से लपेट कर और भूमि पर पटक कर किया था। स्पाइडर बन्दर भी ठीक इसी युक्ति से अपने शत्रु का संहार करता है। प्रकृति बड़ी कौतुकमयी है। सिवा उसके यह कोई नहीं बता सकता कि अङ्गुष्ठ के अभाव की पूर्ति पूँछ में क्यों की गई है।

अन्त में यह बात बता देना आवश्यक होगा कि ऊपर कहे गये वृक्ष-चरों के अतिरिक्त और भी ऐसे क़ाटे बड़े हज़ारों प्राणी हैं जिनका निर्वाह वृक्ष के बिना नहीं हो सकता। इनमें से कुछ तो आपत्ति से बचने के लिये और कुछ शिकार पकड़ने के हेतु वृक्ष पर जा बसे हैं। यथार्थ में ईश्वर ने इनके पूर्व पुरुषों को वृक्ष पर नहीं पैदा किया था और न उन्हें वृक्ष पर सुगमता से चढ़ने उतरने तथा क़लांग भरने योग्य अवयव ही दिया था। परन्तु आवश्यकता की प्रबल प्रेरणा ने इन्हें भूमि पर से भगा कर वृक्ष की शरण में पहुँचा दिया। वहाँ जीवन-संग्राम के लिये जिन बातों की माँग

इनको हुई वह सबकी सब इनके हाथ, पाँव, पंजे और पूँछ में विशेष प्रकार की शक्ति सञ्चित कर के इन्हें दे दी गई। चीता, सर्प, रीछ आदि भयानक जीवधारियों को वृत्त की शरण जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तो भी वे वृत्तों पर घूमते फिरते हैं। इसका मूल कारण यही जान पड़ता है कि ये या तो घात लगाने के लिये वृत्त पर जा चढ़ते हैं अथवा भूमि पर शिकार की कमी होने से वृत्तों पर उसकी बाहुल्यता देख धावा मारते हैं।

—वनमाली प्रसाद शुक्ल

अभ्यास

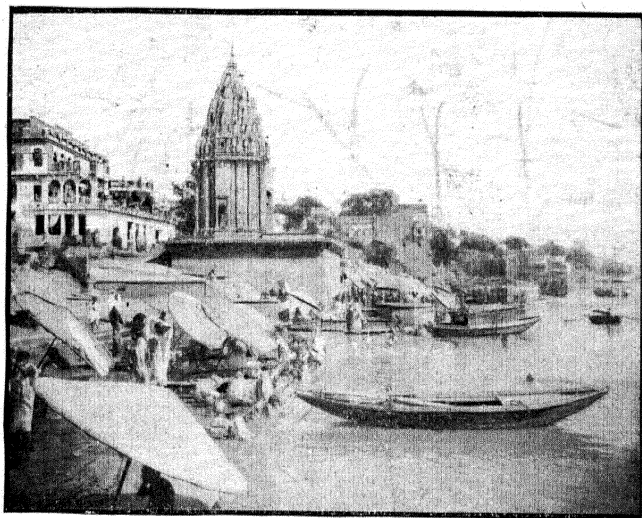
- १—संसार में वृत्तों की सृष्टि क्यों आवश्यक है ?
- २—मुख्य मुख्य वृत्तचर प्राणी कौन से हैं ? उनका जीवन-निर्वाह किस प्रकार होता है ?
- ३—जंगलों को काट डालने से वृत्तचर प्राणियों की क्या दशा होगी ?
- ४—वनमानुष व श्लोथ के विषय में क्या जानते हो ?
- ५—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखो—

नैसर्गिक, क्रीडास्थल, व्यापार, अज्ञानुवाहु और संतप्त।

१५—गङ्गा की शोभा

नव उज्ज्वल जल धार हार हारक सी सोहति ।
 बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति ॥
 लोल लहर लाहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
 जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥

सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत ।
 दरसन मञ्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
 श्री हरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मनि द्रवित सुधारस ।
 ब्रह्म कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरबस ॥
 शिव सिर मालति-माल भगोरथ नृपति पुण्यफल ।
 पेरावत गजगिरि पवि हिम मन कण्ठहार कल ॥
 सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन ।
 अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥
 कासी कहूँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई ।
 सपने हूँ नहिं तजी रहो अंकम लपटाई ॥
 कहूँ बंधे नव-घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
 कहूँ क्षत्री कहूँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥
 धवल धाम चहुँ ओर फरहरत भुजा पताका ।
 घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
 मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत ।
 वेद पढ़त कहूँ द्विज कहूँ जागी ध्यान लगावत ॥
 कहूँ सुन्दरी नहान नीर कर जुगल उछारत ।
 जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
 धोषत सुन्दरि बदन करन अति ही छवि पावत ।
 वारिधि नाते ससि-कलंक मनु कमल मिटावत ॥
 सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
 कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥



गंगा-घाट (बनारस)

दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई ।

गङ्गा-छवि हरिचन्द्र कछु बरनी नहिं जाई ॥

—हरिचन्द्र

अभ्यास

१—गङ्गा की शोभा वर्णन करो ।

२—क्या तुमने कोई नदी देखी है ? अथवा तुम्हारे गाँव या घर के समीप कोई नदी बहती है ? अगर बहती हो तो बताओ उसके किनारे कौन से पेड़ लगे हैं ? वह नदी किस नदी से मिलती है ? उस नदी का पाट कितना चौड़ा है ? उसमें कोई नाव चलती है या नहीं ? उसमें मछलियाँ पाई जाती हैं या नहीं ? उससे सिंचाई होती है या नहीं ? उसके किनारे खेत हैं या नहीं ?

३—इन शब्दों के अर्थ लिखो—

लोल, कल, अम्बुज, धवल, सञ्चारन, साका, जुगल, सुच्छ, वारिधि, सुभग, स्वर्ग, सोपान, द्रवित, नख, चन्द्रकान्त, गिरिवर, ससि, नवल ।

४—इनके शुद्ध रूप लिखो—

सुच्छ, ससि, जुगल, कुसुमन, धुजा, सरिस ।

१६—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

“ होनहार विरवान के होत चीकने पात ”

मेदिनीपुर ज़िले में घोरसिंह नाम का एक गाँव है । वहाँ एक बहुत गरीब बुढ़िया ब्राह्मणी रहती थी । ठाकुरदास बन्द्योपाध्याय नाम का उसके बेटा था । ठाकुरदास जब छोटे थे तब उनकी माँ सूत कात कर किसी तरह गुज़ारा करती थी । जब

ठाकुरदास बड़े हुए तो वह कलकत्ते में आये। बहुत खाज करने पर उनको वहाँ ८) महीने की एक नौकरी मिला तब से इसी ८) में वे अपने घर-खर्च चलाने लगे।

कुछ दिनों ठाकुरदास के एक पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होंने ईश्वरचन्द्र रखा। पुत्र के पढ़ाने की ठाकुरदास को बड़ी अभिलाषा थी। उन दिनों आजकल की तरह गाँव गाँव में पाठशालाएँ न थीं। ठाकुरदास ने कालीकान्त चट्टोपाध्याय को अध्यापक नियत करके अपने गाँव धीरसिंह में एक पाठशाला खुलवायी और वहीं पर अपने लड़के ईश्वरचन्द्र के पढ़ने का प्रबन्ध किया।

ईश्वरचन्द्र का पढ़ने में बहुत मन लगता था। सब लड़कों में सब से पहिले ही पाठ याद करके गुरु जी को सुना देते थे इससे गुरु जी उनको बहुत प्यार करते थे। यहाँ तक कि रात को भी उनको पढ़ाते थे और अपनी गोद में लेकर उनको उनके घर पहुँचा आया करते थे। ईश्वरचन्द्र ने तीन वर्ष में उस पाठशाला की सब पढ़ाई पढ़ ली। जिस तरह वे पढ़ने में सब बालकों से तेज़ थे उसी तरह लिखने में भी उनके अक्षर अपने दर्जे के सब लड़कों से सुन्दर बनते थे।

एक दिन कालीकान्त ने ठाकुरदास से कहा कि जितना मैं पढ़ा सकता था वह सब तुम्हारे लड़के ईश्वरचन्द्र को पढ़ा चुका हूँ। अब आगे मैं नहीं पढ़ा सकता। इससे अब तुम इसे कलकत्ते ले जाओ और इसके पढ़ाने का अच्छा प्रबन्ध करो। यदि इसके

पढ़ने का उचित प्रबन्ध होता रहा तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह लड़का अद्वितीय विद्वान् होगा ।

गुरु जी के मुख से अपने पुत्र की ऐसी प्रशंसा सुनकर ठाकुर-दास का उत्साह और भी बढ़ गया । उन्होंने कलकत्ते ले जाकर इनको अंगरेज़ी पढ़ाने का विचार किया । परन्तु ईश्वरचन्द्र की माता बड़ी चिन्ता में पड़ गयीं । वे सांचने लगीं कि ईश्वरचन्द्र विदेश चला जायगा तो मैं कैसे रहूँगी । फिर अभी तो यह आठ वर्ष का बच्चा ही है । अकेले इसका जी कैसे लगेगा । वहाँ जब यह मुझे याद करके रोवेगा तो इसे गोद में लेकर कौन बहलावेगा । इसी प्रकार की अनेक बातें माता के चित्त को दुखी करने लगीं । परन्तु जब यह सोचा कि घर में रहने से लड़के की पढ़ाई न हो सकेगी और इससे उसकी भावी उन्नति में बाधा पड़ेगी तब किसी तरह अपना हृदय कठोर करके पुत्र को कलकत्ते भेजने को राज़ी हुई ।

गुरु कालीकान्त जी को ईश्वरचन्द्र से ऐसा प्रेम हो गया था कि वे भी उनके साथ साथ कलकत्ते गये । अपने गाँव से कलकत्ते आते समय रास्ते में ईश्वरचन्द्र ने मील के पत्थरों पर अंगरेज़ी के अङ्क लिखे देखे । बस उन्होंने कलकत्ते पहुँचते पहुँचते सब अङ्क याद कर लिये और पिता के पास एक बिल अंगरेज़ी में लिखा रक्खा था उसका जोड़ ठीक ठीक लगा दिया ।

आठ वर्ष के बच्चे की ऐसी आसाधारण शक्ति देख कर सब अचम्भे में आ गये । गुरु जी ने तो मारे प्रेम के उनको गोदी में सा० सो० द्रि०—६

उठा लिया और चूम कर कहने लगे—“ धन्य ईश्वर ! भगवान करे तुम बहुत दिन जियो, हम जो तुमको इतना चाहते हैं सो हमारा चाहना आज सार्थक हुआ ।”

पुत्र की प्रशंसा सुन कर पिता का हृदय भी आनन्द से भर गया । उस समय उनकी आमदनी १०) महीने की थी उसी में सारे गृहस्थी के खर्च चलाते थे । तो भी ठाकुर दास ने पाँच रुपये महीना फ़ीस देकर लड़के को हिन्दू कालेज में अँगरेज़ी पढ़ाने का विचार किया । किन्तु पहले संस्कृत अच्छी तरह पढ़ ले तब पीछे से अँगरेज़ी पढ़ावेंगे—यह सोच कर अन्त में संस्कृत कालेज में ही ईश्वरचन्द्र को भरती कराया ।

ठाकुरदास ईश्वरचन्द्र को लेकर कलकत्ते में अपने मालिक जगद्दुर्लभ सिंह जी के घर आये । सिंह जी बड़े ही दयालु और भले आदमी थे । वह ठाकुरदास को पिता की तरह आदर सम्मान करते थे ।

ईश्वरचन्द्र जब कलकत्ते आये ही थे तब कुछ दिनों तक उनको अपनी माँ और दादी बहुत याद आती थीं ; किन्तु सिंह जी की छोटी बहिन राईमणि उनको उनकी माता से भी अधिक प्यार से रखने लगीं । उनके खाने पीने तथा और सब बातों का ध्यान राईमणि को सदा बना रहता था । प्रेम से तो पशु भी घश में हो जाता है फिर आठ वर्ष का बालक यदि राईमणि के प्यार के सामने माँ को भूल गया तो कौन सी अचम्भे की बात है ।

ईश्वरचन्द्र को उनकी सुशीलता के कारण सिंह जी के घर के सभी लोग बहुत प्यार करते थे। यहाँ पर ईश्वरचन्द्र को घर से भी अधिक आराम मालूम होने लगा। उन्हें सब से अधिक प्रसन्नता तो इस बात की थी कि यहाँ उनके पढ़ने की बड़ी सुविधा थी। यदि सिंह जी ऐसे सज्जन के घर ईश्वरचन्द्र को आश्रय न मिलता तो उनकी प्रतिभा का विकास होता या नहीं इसको कौन कह सकता है।

आठ वर्ष के बालक ईश्वरचन्द्र ने कलकत्ते के संस्कृत कालेज में भरती होकर छः महीने के भीतर ही अपनी ऐसी योग्यता दिखलाई कि उनको पाँच रुपये महीने की छात्रवृत्ति मिलने लगी। इनके पिता को इससे कुछ सहारा मिला। यह जो कुछ पढ़ते रात को सोते समय सब पिता को कह सुना दिया करते थे। ठाकुरदास नौ बजे रात को घर आया करते थे। यदि किसी दिन पुत्र को सोते पाते तो बुरी तरह से उनको मारते थे। बालक का रोना सुनकर सिंह जी के घर के सब लोग ठाकुरदास को बहुत कुछ कहते सुनते और लड़के को इस तरह पीटने की निन्दा भी करते थे। पिता के घर आने के पहले कहीं नींद न आ जाय इस डर से ईश्वरचन्द्र अपनी आँखों में कड़वा तेल लगा लिया करते थे क्योंकि तेल की चरपराहट से नींद नहीं आती थी।

आठ वर्ष के छोटे बालक ईश्वरचन्द्र संस्कृत कालेज को छात्रा लगाकर पढ़ने जाया करते थे यही मालूम होता कि मानो छात्रा

ही कहीं चला जा रहा है क्योंकि एक तो अवस्था ही कम थी दूसरे यह कुछ ठिगने भी थे ।

ईश्वरचन्द्र ने व्याकरण के दर्जे में तीन साल छः महीने पढ़ा, इसी बीच में उन्होंने अमरकोष और भट्टी काव्य भी पढ़ डाले । फिर काव्य के दर्जे में पढ़ने लगे और उसमें बड़ी योग्यता के साथ पास हुए । पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वे अलङ्कार पढ़ने लगे । इसके उपरान्त छः महीने में ही स्मृति-शास्त्र भी पढ़ लिया और 'ला' कमेटी की परीक्षा में बड़ी योग्यता से पास हुए और इसी कारण त्रिपुरा की जजी में पण्डित का पद मिला । परन्तु इनके पिता को इनका यह पद अच्छा न लगा, इसीसे पितृ-भक्त ईश्वरचन्द्र ने उस पद को छोड़ दिया । फिर इन्होंने दर्शनशास्त्र और वेदान्त की समस्त पाठ्य पुस्तकें पढ़ कर संस्कृत कालेज की सारी पढ़ाई समाप्त कर दी । उनके जितने अध्यापक थे, वे सब यही कहा करते थे कि " यह बालक भारतवर्ष में अद्वितीय पंडित होगा । "

किसी बालक ने भी इतनी थोड़ी अवस्था में संस्कृत के इतने शास्त्रों को नहीं पढ़ा । संस्कृत शास्त्रों की ऐसी अच्छी योग्यता किसी और को भी हुई या नहीं यह बात ठीक ठीक नहीं कही जा सकती । उनकी इसी अपूर्व योग्यता के कारण उनके अध्यापकों ने मिलकर उनको " विद्यासागर " की पदवी दी थी । इसके उपरान्त और भी कई लोगों को विद्यासागर की पदवी मिली; परन्तु

आज भी “ विद्यासागर ” नाम लेने से केवल पूज्यपाद पं० ईश्वर-चन्द्र का ही बोध होता है ।

विद्यासागर के छात्र-जीवन की कुछ बातें हम ऊपर सुना चुके हैं । जिनसे उनको अपूर्व प्रतिभा का अन्दाज़ा कुछ कुछ मिल सकता है । जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि कैसी कैसी कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने कैसे परिश्रम से इतनी विद्या पढ़ी तो और भी आश्चर्य होता है ।

जिस समय वे व्याकरण की पढ़ाई समाप्त कर चुके थे तब उनके और दो छोटे भाई कलकत्ते में पढ़ने आये थे । ईश्वरचन्द्र बड़े सवरे स्नान करके बाज़ार से सौदा-सुलुक लाते, मसाला पीसते, तरकारी बनाते, अपने हाथ से लकड़ी फाड़ते, इस प्रकार दो बार चार आदमियों की रसाई बनाते थे । रसाई में दाल भात तरकारी आदि कई चीज़ें बनानी पड़ती थी । स्वयं अपने हाथों चौका बर्तन भी करना पड़ता था । पिता जी को और छोटे भाइयों को कष्ट होगा यह सोच कर वह उनसे किसी प्रकार की सहायता नहीं लेते थे । सब काम अपने आप ही करना उनको रुचता था । पिता निर्धन थे इससे इनको कभी कुछ अच्छी वस्तु खाने को भी नहीं मिलती थी । जो कुछ मिलता उसी को खाकर प्रसन्न रहते थे ; परन्तु जहाँ तक हो सकता पिता और दोनों भाइयों को अच्छा भोजन कराने का यत्न करते थे ।

भोजन बनाने का कष्ट तो उठाना ही पड़ता था ; परन्तु सोने का भी उनको बड़ा ही कष्ट था । उनके सोने का स्थान केवल दो हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा था ।

वह दस बजे रात को खा पीकर सोते थे और दो घण्टे के बाद ही उनके पिता उनको १२ बजे फिर जगा देते थे। बस ईश्वरचन्द्र पढ़ने बैठ जाते थे और पढ़ते पढ़ते भोग हो जाता था। कालेज के रास्ते में आते जाते समय भी वह बराबर पढ़ा करते थे। विद्यासागर के छात्र-जीवन की बातें सुनकर तो तुमको अचरज होता ही होगा। पर यदि उनके जीवन की और बातें सुनाओगे तो और भी अचरज होगा। यह केवल विद्यासागर ही नहीं थे; किन्तु वे दीन दुखियों का बहुत कुछ दान दिया करते थे इससे उनको लोग 'दयासागर' भी कहते थे।

—सुदर्शनाचार्य बी० ए०

अभ्यास

- १—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर में तुमको जो अपूर्व गुण देख पड़े हैं उनको बतलाओ और उन गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न करो।
- २—उनको विद्यासागर की पदवी कब और कैसे मिली? क्या यह पदवी उनके लिए तुम्हारी समझ में ठीक थी?
- ३—यह पढ़ने में कैसा परिश्रम करते थे? उनके विद्यार्थी जीवन को अपने विद्यार्थी जीवन से मिलाओ और जो दोष तुमको अपने जीवन में दृष्टि आवे उनके छोड़ने का प्रयत्न करो।

१७—शान्ति

१

शान्ति, प्यारी शान्ति, तेरा है कहां पर वास ?
हूँढ़ कर तुझ को थका, पहुँचा न तेरे पास ॥

लोग तेरे ही लिये करते अनेक उपाय ।
किन्तु, तो भी तू न लगती हाथ उनके हाय !

२

कोई तुमको खोजता है जंगलों के बीच ।
कोई तुमको चाहता है काम करके नीच ॥
कोई तुमका प्राप्त करने के लिए धनधान ।
बना रुचि से रसिक लंपट, करे मदिरा पान ॥

३

कोई सता कर और को कर सत्य का अपलाप ।
देखता है स्वप्न तेरा, प्राप्त कर अभिलाष ॥
कोई उद्यमहीन हो आलस्य ही में चूर ।
जानता तुमको निकट ही पर रहे तू दूर ॥

४

कोई तेरे हेतु रचता है विविध षड्यन्त्र ।
जा मसानों में निडर कोई जगाता मंत्र ॥
शत्रु से संग्राम में तुम्हें को कोई अनजान ।
जानता है, किन्तु पाता है अशान्ति महान ॥

५

एक आध उपाधि लेकर मूढ़, कोई मोल ।
तुम्हें पाने के लिये देता है थैली खोल ॥
कोई झूठे गुण गँवा कर, ढोंग का रच ढंग ।
शान्ति, तेरे हेतु है अपना जमाता रंग ॥

६

चर्च, मस्जिद, मन्दिरों में कर अनेक प्रवेश ।
 शान्ति तेरे ही लिये सुनते वहाँ उपदेश ॥
 चाहते इस तरह तुझको सब मनुष्य तथापि ।
 शान्ति, तू मिलती नहीं संसार में कुत्रापि ॥

७

मैं समझता हूँ, बताते हैं यही सब वेद ।
 भेद भाव मिटे बिना मिटता नहीं है खेद ॥
 बस, अगर कोई कहीं संसार को दे ढाँड़ ।
 मोहमय ममता मिटावे, सर्व नाते तोड़ ॥

८

कर्मयोगी ज्ञान से सम्पन्न हो स्वच्छन्द ।
 ब्रह्ममय ब्रह्माण्ड की सेवा करे सानन्द ॥
 तो, तुझे निज हृदय में ही कर सके वह प्राप्त ।
 तू रहे उसके लिए संसार भर में व्याप्त ॥

—रूप नारायण पाण्डेय

अभ्यास

१—कुत्रापि, खेद, कर्मयोगी, ब्रह्ममय, ब्रह्माण्ड, वास, लंपट के अर्थ बताओ ।

२—द्वेष पद्य का अर्थ लिखो ।

३—उपदेश, व्याप्त, शान्ति व्याकरण से क्या हैं ?

१८-धारा नगरी

धारा बहुत प्राचीन नगर है। राजा भोज के समय में वह विद्या का प्रधान केन्द्र था। आज कल भी वह धारराज्य की राजधानी है। वह राजपूताना मालवा रेलवे के मऊ स्टेशन से ३४ मील है। स्टेशन पर मोटर गाड़ियाँ आसानी से मिल जाती हैं।

धारा राज्य का क्षेत्रफल १७७८ वर्ग-मील है। इसमें दो नगर तथा ६७२ ग्राम हैं। सन् १९२१ में इसकी जन संख्या दो लाख तीस हजार थी। इस राज्य का मुख्य नगर धार है जिसकी जन-संख्या सन् १९२१ में १६ हजार थी।

धारा नगरी पहुँचते ही सब से पहले वहाँ का किला दिखाई पड़ता है। इस किले का १४ वीं शताब्दी में मुहम्मद तुगलक ने बनवाया था। इसी किले में द्वितीय बाजीराव का जन्म सन् १७७४ में हुआ था। सन् १८५७ में गदर के समय जनरल स्टुअर्ट ने घेरा डाल कर सात दिन तक गोला बारूद चला कर इसे फतह किया था। यहाँ के खजाने में उसे ६ लाख रुपये मिले थे। इस किले के अन्दर एक पुरानी बावली है, जिसकी गहराई १५०—२०० फीट है। ऊपर से पानी की सतह तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। किले के अंदर आज कल कैदी रखे जाते हैं। उनसे कपड़ा बुनने का काम भी लिया जाता है।

किले से थोड़ी दूर पर मुञ्ज सागर नाम का एक बड़ा तालाब है। यह धारा नगरी के १२ तालाबों में से प्रधान है। इस तालाब

को राजा मुञ्ज ने दसवीं सदी में बनवाया था । राजा मुञ्ज भोज का चाचा था । वह रणवीर योद्धा तथा सुप्रसिद्ध लेखक था । १२ तालाबों के कारण धार की प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ गई है । कई तालाबों में कमल भी होते हैं । बसंत में जब सब तालाब भर जाते हैं और चारों तरफ हरियाली छा जाती है तब यहाँ का दृश्य बहुत सुहावना मालूम होता है । एक तालाब के पास छोटी सी पहाड़ी पर श्रीकालिका देवी जी का मन्दिर है । मन्दिर के ऊपर तक सीढ़ियाँ हैं । धारा राज्य की तरफ से देवी जी के पूजन की पूरी व्यवस्था है ।

धारा नगरी के एक कोने में भोजशाला है । यह एक मसजिद है जिसे मालवा के किसी सुलतान ने ११ वीं वा १२ वीं शताब्दी में बनवाया था । कहा जाता है कि राजा भोज का प्रसिद्ध विद्यालय या श्रीसरस्वती मन्दिर इसी स्थान पर था । इस मसजिद में पत्थरों के कुछ ऐसे टुकड़े लगे हुए हैं जिन पर संस्कृत के कुछ श्लोक खुदे हुये हैं । कहा जाता है कि राजा भोज के समय विद्यार्थी-गण इन्हीं श्लोकों पर से अध्ययन करते थे । भोज के समय में धारा नगरी में और राज्य भर में संस्कृत-विद्या का खूब प्रचार था । उस समय में एक भी स्त्री पुरुष अपढ़ नहीं था । परन्तु आज तो भारत के अन्य भागों के समान यहाँ भी अविद्या का राज्य है । भोजशाला से कुछ दूरी पर लाट मसजिद है । इस मसजिद को दिलावर खाँ ने सन् १४६५ में हिन्दू मन्दिरों का तोड़ कर बनवाया था । इस मसजिद के बाहर लोहे की एक बड़ी लाट पड़ी हुई है,

जिसके कारण वह लाट मसजिद कहलाती है। यह लाट एक जयस्तम्भ है। परन्तु किस राजा के समय बनवाई गई थी ठीक पता नहीं चलता।

धार-नरेश का भीरा महल भी एक दर्शनीय स्थान है। यह नगर के कुछ दूरी पर है। इस महल में राजा साहब के माननीय अतिथि ठहराये जाते हैं। महल के कमरे अच्छे सजे हुए हैं। एक कमरे में तीन काँच एक स्थान पर इस तरह लगाये गये हैं कि देखने वाले के ५०, ६० चित्र आगे सामने दो कतारों में दिखाई पड़ते हैं। धारा नगरी में एक हाई स्कूल, लायब्रेरी तथा अस्पताल भी है।

धारा नगरी हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर होते हुए भी वहाँ हिन्दू राजाओं के द्वारा बनाये हुए एक भी प्राचीन मन्दिर, धर्मशाला इत्यादि इस समय मौजूद नहीं हैं। इसका कारण यह है कि नगर तथा राज्य सन् १३१० से १७३२ तक मुसलमान सुलतानों तथा बादशाहों के अधिकार में रहा। इन्होंने हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ कर मसजिदें बनवा डालीं जो गिरी हुई दशा में अब तक मौजूद हैं।

प्राचीन हिन्दू गौरव और सभ्यता के स्मारक-स्वरूप इस नगर में अब केवल तालाब और गौड़ बाघीसा ब्राह्मणों के परिवार हैं। इन ब्राह्मणों को राजा भोज ने यज्ञ कराने के लिए उत्तर भारत से बुलवाया था। और उनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर अपने राज्य में आश्रय दिया था। जब सन् १७३२ में मराठा राज्य की वहाँ

स्थापना हुई तब मराठों ने भी इनका मान किया और इनको आश्रय दिया। राजा के धार्मिक कार्यों में तब से इनका बराबर सम्बन्ध चला आता है। इस जाति के कई सज्जन संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं, जिनके कारण धारा नगरी आज कल भी संस्कृत का एक छोटा मोटा केन्द्र मानी जाती है। श्रीमान् पंडित पूर्णाशंकर जी जोशी जो धार के राज्य के वर्तमान मंत्रिमंडल के एक सदस्य हैं इसी जाति के सज्जन हैं। इस जाति के एक और सज्जन श्रीमान् मकुन्द जी शास्त्री ज्योतिर्विद् का राज दरबार में बहुत मान है। अंगरेजी शिक्षा प्राप्त करने की तरफ इस जाति के नवयुवकों का ध्यान थोड़े ही समय से आकर्षित हुआ है। कुछ नवयुवकों ने श्री-गणेश-विद्या-मन्दिर नाम का एक छात्रालय खोल रखा है। इसमें विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध किया गया है। और धार्मिक शिक्षा के साथ साथ उनका अंगरेजी शिक्षा में भी बहुत सहायता पहुँचाई जाती है। इन नवयुवकों का साहस स्तुत्य है।

श्रीमान् पूर्णाशंकर जी उपाध्ये इस जाति के उच्च क्रांति के चित्रकार हैं। आप संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् हैं। आपका जन्म संवत् १९११ में हुआ था। आपके पौराणिक चित्र बहुत ही मनोहर और भावपूर्ण होते हैं। सन् १९०४ में बम्बई-आर्ट-सोसाइटी की प्रदर्शनी में आपको एक स्वर्ण पदक मिला था। आप वृद्ध होते हुए भी चित्र लेखन का कार्य प्रतिदिन करते हैं।

धार के महाराजा सर उदाजीराव पवार के० सी० आई० ई० का स्वर्गवास ३० जुलाई सन् १९२६ को सोलन में हुआ। आप अपने सब कार्यों में प्रजा-हित का बहुत ध्यान रखते थे। आप लोकप्रिय भी बहुत थे। धार के वर्तमान राजा आनन्दराव साहब बहादुर नाबालिग हैं। आपका जन्म २४ नवम्बर सन् १९२० को हुआ था। आपकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया है। आजकल राज्य कार्य महारानी साहिबा की देख रेख में मंत्रिमंडल द्वारा होता है।

—दयाशङ्कर दुबे

अभ्यास

- १—धारा नगरी के दर्शनीय स्थान कौन कौन हैं ?
- २—राजा भोज के समय धारा नगरी की क्या दशा थी ?
- ३—धारा नगरी में हिन्दू राजाओं द्वारा बनवाए हुए प्राचीन मन्दिर इस समय क्यों नहीं हैं ?
- ४—धार राज्य में शिक्षा की क्या दशा है ?

१६—रामचन्द्र जी का बालपन

(१)

अवधेश के द्वारे सकारे गई,
सुतगोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकिहौं सोचविमोचन को,
ठगि सी रही जो न ठगे धिक से ॥

तुलसी मन रंजन रंजति अंजन,
 नैन सुखंजन जातक से ।
 सजनी शशि में सम सील उभै,
 नव नील सरोरुह से विकसे ॥

(२)

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि,
 मंजु बनी मणिमाल हिये ।
 नवनील कलेवर पीत भँगा,
 भलकै पुलकै नृप गोद लिये ॥
 अरविंद सों आनन रूपमरंद,
 अनन्दित लोचन भृङ्ग पिये ।
 मन मों न बस्यो अस बालक जो,
 तुलसी जग में फल कौन जिये ॥

(३)

तन की द्युति श्याम सरोरुह लोचन,
 कंज की मंजुलताई हरै ।
 अति सुन्दर सोहत धूरि भरे,
 छबि भूरि अनंग की दूरि धरै ॥
 दमकै दंतियाँ द्युति दामिन ज्यों,
 किलकै कल बाल विनोद करै ।
 अवधेश के बालक चारि सदा,
 तुलसी मन मंदिर में बिहरै ॥

(४)

कबहुँ शशि माँगत रारि करै,
 कबहुँ प्रतिबिम्ब निहार डरै ।
 कबहुँ करताल बजाय कै नाचत,
 मातु सबै मनमोद भरै ॥
 कबहुँ रिसियाइ कहै हठिकै,
 पुनि लेत सोई जेहि लाग अरै ।
 अवधेश के बालक चारि सदा,
 तुलसी मन मन्दिर में बिहरै ॥

(५)

घर दंत की पंगति कुन्द कली,
 अधराधर पल्लव खोलन की ।
 चपला चमकै घन बीच जगै,
 छबि मोतिन माल अमोलन की ॥
 घुघुरारी लटै लटकै मुख ऊपर,
 कुंडल लोल कपोलन की ।
 निवद्धावरि प्राण करै तुलसी,
 बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥

(६)

पद कंजनि मंजु बनी पनहीं,
 धनुहीं शर पंकज पाणि लिये ।
 लरिका संग खेलत डोलत हैं,

सरयू तट चौहट हाट हिये ॥

तुलसी अस बालक सों नहिं नेह,

कहाँ जप योग समाधि किये ।

नर वे खर शूकर श्वान समान,

कहाँ जग में फल कौन जिये ॥

—तुलसीदास

अभ्यास

१—यह पद्य किस पुस्तक से लिया गया है ? इसके लेखक का संक्षिप्त परिचय दो ।

२—ऊपर के पद्यों में कौन सब से अच्छा है और क्यों ?

३—अवधेश से क्या अभिप्राय है ? उनके चार बालक कौन कौन से थे ?

४—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखो —

रंजित, सरोरुह, कंज, मंजु, अरविन्द, अनंग और सकारे ।

५—नवनील-सरोरुह, मन-मन्दिर, अवधेश और पट्टज-पाणि में कौन समाप्त हैं ?

२०—सम्राट् अकबर

सन् १५५६ ई० में अपने बाप हुमायूँ के मरने के बाद अकबर बादशाह हुआ । उसका पूरा नाम अबुलमुजफ्फर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबरशाह था । सिंहासन पर बैठते समय अकबर की आयु १३ बरस ४ महीने थी । इस थोड़ी अवस्था में इतना बड़ा राज्य चलाना मामूली आदमी का काम न था ।

अकबर का रंग गोरा और बदन गठा हुआ था। शूरता उसमें कूट कूट कर भरी हुई थी। वह घोड़े का बहुत अच्छा सवार था। एक बेर वह घोड़े की डाक से दो दिन में २२० मील चला गया। वह आसानी से पन्द्रह, बीस कोस पैदल चल सकता था। रात-दिन में तीन घंटे से अधिक नहीं सोता था।

ऐसा वीर और साहसी, ऐसा मिहनती और होनहार नवयुवक राजसिंहासन पर बैठा। अकबर चाहता था कि पहले अपने बाप के जीते हुए देश का ठीक प्रबन्ध करके उसका अच्छी तरह हाथ में कर लें तब दूसरे नए नए सूबे जीतकर अपना राज्य इतना फैला दें जितना पहले किसी मुसलमान बादशाह के समय में नहीं हुआ था। हुमायूँ का आज्ञापालक नौकर बैरमख़ाँ खानखाना अकबर की देखभाल करता था। उसका सब प्रकार से सहायता देता था। सिकंदर सूर और हेमू बनिए को हराने में बैरमख़ाँ ने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। किन्तु एक कवि ने ठीक कहा है "प्रभुता पाइ काहि मद नाही"। बैरम सोचने लगा कि अकबर का राज्य उसके बिना चल ही नहीं सकता। इसी जोश में आकर उसने अकबर पर रोब गाँठना चाहा। राज्यशासन की बागडोर हाथ में लिए हुए, सिंहासन पर बैठकर मस्तक पर मुकुट धारण किए हुए, कोई भी भाग्यवान् पुरुष ऐसा अपमान नहीं सह सकता था। अकबर इस अपराध को कैसे क्षमा कर सकता था।

अकबर शिकार के बहाने दिल्ली चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने घाषणा कर दी कि राज्य का कुल काम मैंने अपने हाथ में लिया और बैरमख़ाँ को अलग कर दिया। बैरमख़ाँ ने घबराकर मक्के जाने का विचार किया; किन्तु फिर उसके मन में लालच समाया। कुछ पल्टन इकट्ठी कर के उसने पंजाब में बादशाही पल्टन से लड़ाई की। युद्ध में हार कर वह अकबर के पैरों पर गिर पड़ा और राने लगा। दयावान् बादशाह ने उसको उठा कर अपनी दाहिनी ओर बैठाया और उसका पुराना पद देने को कहा। परन्तु बैरम ने लज्जा के मारे हिन्दुस्तान में रहना स्वीकार नहीं किया। मक्के जाते समय गुजरात में एक पठान के हाथ से वह मारा गया। उस पठान के बाप को बैरमख़ाँ ने पहले कभी मारा था। वह वीर पितृभक्त बाप का बैर लेने के लिए तैयार था। अपना कार्य करके वह पितृ-ऋण से मुक्त हुआ। कहा भी है “बाप का बैरी जो नहीं मारे नाहक जन्म विधाता दीन।” यही साच कर अंगद ने अपने इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जी से बाप का बैर लेना अपना कर्त्तव्य समझा। अपनी दूरदर्शिता और राजनीतिपटुता के कारण वह जगत् प्रसिद्ध है, बहादुरी में उसके जाँड़ के बहुत थोड़े बादशाह हुए हैं, परतन्त्र तथा विधर्मी जाति के साथ जितनी सहानुभूति अकबर ने दिखलाई है उतनी और किसी मुसलमान बादशाह ने नहीं दिखलाई है, उसका विद्या-प्रेम श्लाघनीय है, पराजित शत्रुओं के प्रति उसने सदा दया दिखलाई, लेकिन उसकी कामुकता ने सब पर

पानी फेर दिया । भारतवर्ष चरित-प्रधान देश है । चाहे आज हम कितने ही गिर गए हों लेकिन हमारे साहित्य और हमारे इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि सदाचार से गिरने को अपेक्षा पर्वत से गिर कर, अग्नि में जलकर मर जाना अच्छा है । हमारे यहाँ विवाह सम्बन्ध बड़ा हो पवित्र कर्तव्य माना गया है । यही कारण है कि अकबर की तरह दयावान् और उदार राजा की जगह जगह निन्दा होती है । वैरमख़ाँ के पुत्र अब्दुलरहोम का अच्छी शिक्षा दी गई । आप अकबर की सभा के नवरत्नों में से थे । आपको सेनापति का पद मिला था । आप बड़े परांपकारी जीव थे । आपने बड़ी चेष्टा की कि राणा प्रताप और अकबर में युद्ध न छिड़े । लेकिन मान का अपमान और सिसादिया कुल की शान के कारण लड़ाई रुक नहीं सकती थी । आप ही हिन्दो-संसार के रहीम कवि हैं । आपके दाहे बड़े हो मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं । आपको अनूठा उपमाओं से आपका सहृदयता और अनुभव का पता लगता है । आपके तीन अनूठे पद नीचे लिखे जाते हैं ।

झिमा बड़न का चाहिए, छोटन का उतपात ।
 का रहीम हरि कां घख्यो, जो भृगु मारी लात ॥
 रहिमन बिगरी आदि की, बने न खरचे दाम ।
 हरि बाढ़े आकाश लों, छुटो न बाधन नाम ॥
 तें रहीम मन आपनो, कोनो चारु चकोर ।
 निशि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥

बैरमखाँ के चले जाने के कुछ ही दिन बाद अकबर ने राज्य पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया। अब उसे नए नए सूबे जीतने का हौसला हुआ। अजमेर, ग्वालियर और लखनऊ पराजित हुए। मालवा अभी तक पठान बादशाहों के सूबेदार बाजबहादुरखाँ के अधिकार में था। उसको जीतने के लिए आदमखाँ भेजा गया। बाजबहादुरखाँ हार कर भाग गया। उसकी स्त्री, जो किसी हिन्दू राजा की लड़की थी, आदमखाँ के हाथ पड़ गई। किन्तु स्त्री धर्मात्मा थी। मालूम नहीं किस कारण एक बार अवश्य वह मुसलमान की स्त्री हो गई थी। लेकिन वह एक को छोड़ कर दूसरे की नहीं होना चाहती थी। इसलिए उसने विष खाकर प्राण दे दिए। मालवा अकबर के अधिकार में आ गया।

—मन्नन द्विवेदी

अभ्यास

- १—अकबर में कौन कौन से ऐसे गुण थे जिसके कारण वह इतना विशाल राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ।
- २—बैरमखाँ कौन थे? इनके पुत्र अब्दुलरहीमखाँ खानखाना का संक्षिप्त चरित अपनी नोट बुक में लिखो।
- ३—श्लाघनीय, आज्ञापालक, कूट कूट कर भरी है इनके भावार्थ समझाओ और इनका प्रयोग अपनी भाषा में करो।

२१-युवा सन्यासी

(१)

गुण-निधान मतिमान सुखी,
 सब भाँति एक लवपुर-वासी ।
 युवा अवस्था बीच विप्रकुल,
 केतु हुआ है सन्यासी ॥
 विविध रीति से उस विरक्त का,
 सुहृद बन्धु समुझाय थके ।
 गङ्गा जी के प्रवाह ज्यों पर,
 उसे न वे सब रोक सके ॥

(२)

वृद्ध पिता माता की आशा,
 बिन व्याही कन्या का भार ।
 शिचा-हीन सुतों की ममता,
 पतिव्रता नारी का प्यार ॥
 सन्मित्रों की प्रीति और,
 कालिज वालों का निर्मल प्रेम ।
 त्याग, एक अनुराग किया,
 उसने विराग में तज सब नेम ॥

(३)

“प्राणनाथ ! बालक सुत दुहिता”,
 यों कहती प्यारी छोड़ी ।

“ हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !! ”

यों रोती महतारी छोड़ी ॥
चिर सहचरी “ रियाजी ” छोड़ी,
रम्य तटी राखी छोड़ी ।
शिखा-सूत्र के साथ हाय !
उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ॥

(४)

धन्य पञ्चनद भूमि जहाँ,
इस बड़भागी ने जन्म लिया ।
धन्य जनक जननी जिसके घर,
इस त्यागी ने जन्म लिया ॥
धन्य सती जिसका पति मरने,
से पहले हो जाय अमर ।
धन्य धन्य संतान पिता,

जिनका जगदीश्वर पर निर्भर ॥

(५)

शोकग्रसित हो गई लघपुरी,
उसकी हुई बिदाई जब ।
द्रवीभूत कैसे न होय मन ?
सन्यासी हो भाई जब ।
खिन्न अश्रुमुख वृद्ध लगे,
कहने “ मङ्गल तव मारग हो ।

जीवन्मुक्ति सहाय ब्रह्म-
विद्या में सन्वर पारग हो ” ॥

(६)

कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर,
कहा कि प्यारे ! सुन लेना ।

बात अन्त को आज हमारो,
ज़रा ध्यान इस पर देना ॥

समदर्शी ऋषि, मुनियों का भी,
भारत प्यारा लगता था ।

इस कारण यह विद्या-बल,
में जग से न्यारा लगता था ।

(७)

सर्व त्याग कर महा-भाग जो,
देशोन्नति में दे जीवन ।

धन्यवाद देते हैं देवगण,
भी उसको हो प्रमुदित मन ॥

अपनी भाषा भेष भाष औ,
भोजन प्यारे भाइन को ।

नहीं समझता उत्तम, समझो,
उससे भली लुगाइन को ॥

(८)

“ एवमस्तु ” कर उच्चारन इन,
सब के उसने उत्तर में ।

कहा “ अलविदा ” और चला,
 वह मन भावन उस औरसर में ।
 लगे वर्षने पुष्प और जय,
 जय की तब हो उठी ध्वनी ।
 मानो भिक्षुक नहीं, वहाँ से,
 चला विश्व का कोई धनी ॥

(६)

उ्यों नगरी में होय स्वच्छता,
 जब आता है कोई लाट ।
 त्यों वन पर्वत प्रकृति परिष्कृत,
 हुए समझ मानों सम्राट ॥
 निष्कण्टक पथ हुआ पवन से,
 वारिद ने जल छिड़क दिया ।
 कड़क तड़ित ने दई सलामी,
 आतपत्र वृक्षों ने किया ॥

(१०)

विहंग कुल ने निज कल-रस से,
 उसका स्वागत गान किया ।
 श्वापद शान्त हुए मृग गण ने,
 दक्षिण में आ मान किया ॥
 श्रेणीबद्ध फलित तरुओं ने,
 उसको झुक कर किया प्रणाम ॥

पुष्पितलता और बिरवों ने,
कुसुम बिछाये राह तमाम ॥

(११)

खड़ा हिमालय निज उन्नत,
मस्तक पर तत्पद धारण को ।
हुई तरङ्गित सुरधुनि तब,
अभिषेक पुनीत करावन को ॥
शिक्षा देती मानो सबको,
जननी-सदृश प्रकृति सारी ।
विषय-विरक्त ब्रह्म-चित्तन-रत,
नर के सब आज्ञाकारी ॥

—माधवप्रसाद मिश्र

अभ्यास

१ —जब युवा सन्यासी चला तो प्रकृति ने उसकी क्या सहायता की ?
राजा और सन्यासी में कौन बड़ा है ?

२ —इनके अर्थ लिखो—

जननी-सदृश, विरक्त, श्रेणीबद्ध, आतपत्र, वारिद, दुहिता, समदर्शी,
अश्रुमुख, खिन्न ।

३ —समासों के नाम लिखो—

जननी-सदृश, विप्रकुल-केतु, जनक-जननी, भेष-भाव, विद्या-बल,
विषय-विरक्त ।

२२-सभ्यता की कथा

धर्म, जाति, भाषा, रहन-सहन और परम्परा आदि बातें भारत के पाश्चात्य राष्ट्रों का रूप देने में बाधक हैं। परन्तु पाश्चात्यों के संसर्ग के कारण अब उनके निवासियों की कट्टरता बहुत कुछ दूर होने लगी है और उन पर भी देशकाल का प्रभाव पड़ने लगा है। साँड़, बन्दर, लता, वृत्त आदि के पूजक तथा टोना-जादू, भूत-प्रेत के मानने वाले भी धीरे धीरे सीधे रास्ते पर आने और मिथ्याविश्वास का परित्याग कर आधुनिक सभ्यता के महत्व को अङ्गीकार करने लगे हैं।

भारत के एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त वालों को तथा एक धर्म के लोग दूसरे धर्म वालों को भारतीयता के नाते से नहीं देखते। तो भी यह बात कोई विशेष महत्व नहीं रखती, दूसरे देशों में भी यह अवस्था किसी न किसी परिणाम में मौजूद है और भारत में तो अब इस दृष्टित भावना का भी धीरे धीरे अभाव हो रहा है।

जात-पाँत का भेद-भाव भारत में वास्तव में प्रबल था। परन्तु अब वह धीरे धीरे शिथिल पड़ रहा है और यदि यही क्रम जारी रहा तो वह दिन दूर नहीं जब यह प्राचीन संस्था यहाँ नाम-मात्र का रह जाय। क्योंकि आवश्यकता का बोझ बहुत भारी होता है। वह अपने आप ही सब बातें करा लेती है। कहते हैं कि सन् १७२६ में जब पहले मेडिकल कालेज भारत में खुला था तब अधिकारियों ने यह समझा था कि हिन्दू लोग यहाँ पढ़ने नहीं

आयेंगे, क्योंकि वे मुर्दा या हड्डी नहीं स्पर्श करेंगे। परन्तु जब इस कालेज के पहिले हिन्दू विद्यार्थी ने एक लाश में अपना चाकू घुमेड़ा था तब उसके स्वागत में फोर्ट विलियम किले से एक बाढ़ दागी गई थी। यह बात सच भले ही न हो, पर आज वही हिन्दू मेडिकल कालेजों में भर्ती होने के लिये इतनी अधिक संख्या में दिखाई देते हैं; कितने ही बेचारे स्थान न पाने पर निराश होकर लौट जाते हैं। जहाँ पहले समुद्र-यात्रा करना पाप समझा जाता था, वहाँ आज लाखों की संख्या में भारतीय समुद्र-यात्रा करते हैं। पिछले युद्ध में तो भारतीयों ने खाद्याखाद्य की भी अधिक परवा नहीं की। युद्ध से लौटे हुए बहुसंख्यक सैनिकों के रहन-सहन में इतना परिवर्तन हो गया है कि अब उनके विरुद्ध बोलने का साहस समाज भी नहीं करता। ये सारे परिवर्तन इस बात के द्योतक हैं कि प्राच्य देशों में क्रान्ति की एक लहर इस समय बह रही है। इन सब बातों से यह मित होता है कि प्राच्य देश जाग्रत हुए हैं और अब वे पाश्चात्य के समक्ष खड़े होने को तैयार हो गये हैं। यह शुभ लक्षण है सही; किन्तु हमें दूसरी ओर आँख नहीं मूँद लेनी चाहिये। भारत में जाग्रति के साथ जो पाश्चात्य विलासिता का भाव फैल रहा है उस पर हमें दृष्टि देनी चाहिये। साहित्य और समाज दोनों में एक तांत्र लोलुपता का भाव प्रविष्ट हो रहा है। इस मनोभाव का मूल कारण पश्चिमीय सभ्यता का अव्यर्थ प्रभाव है। अतएव प्रश्न यह होता है कि इस प्रभाव से प्राच्य देशों को कहाँ तक लाभ होने की सम्भावना है।

वास्तव में सारे संसार में आजकल योरोपीय सभ्यता का ही बोलवाला है। प्राचीन सभ्य जातियाँ तक इसके मनोमोहक रूप की ओर आकृष्ट हो गई हैं। यही नहीं, वे उसके पाश में पूर्ण रूप से आवद्ध हो गई हैं। परन्तु यह सभ्यता वास्तव में है कौन सी वस्तु। लाग इसकी तरह तरह से व्याख्या करते हैं। उन व्याख्याओं में एक व्याख्या यह भी है कि यह सभ्यता और कुछ नहीं केवल 'सुखवाद' का विकसित रूप है और इसका यह रूप अन्यत्र चाहे न हो; किन्तु प्राचीन असभ्य जातियों में तो अधिक आदरणीय स्थान प्राप्त कर चुका है। उदाहरण के लिये भारत में तो इसकी सुखवादात्मक व्याख्या भले प्रकार घटित होती है।

सभ्यता के केन्द्रस्थल भव्य नगरों में आधुनिक सभ्यता का नग्नरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। जहाँ एक ओर धनाधिपों की गगन-चुम्बी अट्टालिकायें, देवोपम उद्यान और विलास के क्रीडा-क्षेत्र नाटक घर आदि उसके गौरव का परिचय दे रहे हैं, वहीं इन सब बातों के सन्निकट दीन-दुखियों की गन्दी कोठरियाँ उनके निवासियों की करुणाजनक स्थिति का चित्र उपस्थित करके उसके प्रत्यक्ष पैशाचिक रूप का परिचय प्रदान करती हैं। इस प्रकार सभ्य मनुष्य-समाज के अन्तर्गत उसका अधिकांश भाग आधुनिक सभ्यता का रसास्वादन करने से सर्वथा वञ्चित रहता है। उसके अधिकारी उस समाज का एक अल्प भाग ही हैं। इसीसे

अधिकांश श्रेष्ठ जन इस सभ्यता को एकाङ्गी समझ कर सुख-वाद का रूपान्तर घोषित करते हैं।

वास्तव में यह सभ्यता पूँजीवादियों की सभ्यता है। संसार इसका यह प्रथम आगमन नहीं है। प्राचीन काल में भी भिन्न भिन्न समयों में इसका आविर्भाव होता रहा है। उस समय भी इसके कर्णधार यही पूँजीपति ही थे। अतएव समय समय पर संसार में महामारी के समान इसका अवतार होता ही आया है और इससे कभी मानवजाति का उपकार नहीं हुआ है। अपनी उन्नति के काल में प्रत्येक समय इसने संसार में विनाश और तबाही के रोमहर्षक अभिनव दृश्य उपस्थित किये हैं। इस समय भी यह अपने उसी पैशाचिक रूप का परिचय दे रही है, जो हम अपने आसपास अहर्निश प्रगट रूप में देख सकते हैं।

प्राचीनतम मिस्र की ही सभ्यता की बात लीजिये। मिस्र की समुन्नत दशा में कुछ ही भाग्यशालियों के सुख की व्यवस्था थी। शेष इतर जन पशुओं को भाँति अपना जीवन व्यतीत करते थे। इसीसे हज़रत मूसा के दीन यहूदियों का पक्ष लेना पड़ा। उन्होंने मिस्र के तत्कालीन शासकों का तिरस्कार किया। उनके क्रोध की मूसा महाराज ने ज़रा भी परवा न की। दीनों का पक्षग्रहण करने के कारण ही आज भी मूसा महाराज लाखों मनुष्यों के हृदय-सम्राट् बने हुए हैं। परन्तु विलास-लालुप स्वसुखापेक्षी मिस्र के शासकों का नाम तक लेने वाला आज कोई नहीं रह गया। इसी प्रकार सुसभ्य रोमन लोगों ने भी दीन दुखियों की रक्ती भर परवा

नहीं की। उनकी सभ्यता की रचना यद्यपि उन्हीं तिरस्कृत दीन दुखियों का रक्त निचाड़ कर ही हुई थी। रोमन-सभ्यता के सूचक जो विशाल कलाद्यातक इमारतें आज भग्न दशा में पड़ी हुई हैं वे सब केवल मुट्ठी भर भाग्यशालियों के विनोदाश्रय मात्र हैं। पागिप-आई और हरकूलेनियम प्राचीन रोम के धन कुबेरों के विलासालय थे। इन तथा दूसरे स्थानों में तत्कालीन धनिकगण अपने पेश्वर्य का मुक्तहस्त होकर उपभोग किया करते थे और उनके धनहीन तथा दरिद्र लाखों देश-बन्धु उनकी पैशाचिक लीला को टुकुर टुकुर देखते रहते थे। उन्हें वैसे सुख दुर्लभ थे।

अभी पिछले समय में मुसलमानी सभ्यता का जो उदय हुआ था वह भी पहले की सभ्यताओं का प्रतिबिम्ब मात्र था। दरिद्र, धर्मान्ध अरबी जब अटलांटिक महासागर के किनारे के प्रशान्त महासागर तक अपनी विजय-वैजयन्ती फहराने लगे तब उन्हें भी इस फ़कारों की सभ्यता को सुखवाद का रूप देना पड़ा। स्पेन के अल्हम्ब्रा से लेकर चीन तक उनके ध्वंसावशेष उपर्युक्त बात का समर्थन करते हैं।

अब रही योरोपीय सभ्यता सो इसके प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान योरोपीय राष्ट्र हैं।

—नरेन्द्रनाथ

अभ्यास

१—प्राच्य देशों में इस समय क्रान्ति की कौन सी लहर वेग से बह रही है ?

२—किन बातों से सिद्ध होता है कि प्राच्य देश अब जाग रहे हैं ?

३—पूँजीपतियों की सभ्यता से क्या समझते हो ?

४—यूरोपीय सभ्यता का सच्चा रूप क्या है ?

२३—वन-विहंगम

(१)

वन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहीं ;
दिन-रात न छोड़ता एक को दूसरा, ऐसे हिले मिले दोनों वहीं ।
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रही ;
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं ।

(२)

रहता था कवूतर मुग्ध सदा अनुराग के राग में मस्त हुआ ;
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ ।
जब जो कुछ चाहा कवूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ ;
इस भाँति परस्पर पत्नियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ ।

(३)

सुविशाल बनों में उड़े फिरते अवलोकते प्राकृति चित्र छटा ;
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटाका भी मान घटा ।
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा ;
कहीं कुञ्ज लता के पितान तने घने फूलों का सौरभ था सिमटा ।

(४)

भरने भरने की कहीं झनकार फुहारा का द्वार विचित्र ही था;
हरियाली निराली न माली लगा, तब भी सब ढंग विचित्र ही था ।
ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था ;
बस जान लो, सात्विक सुन्दरता, सुख संयुत शांति का चित्र ही था ।

(५)

कहीं भील किनारे बड़े बड़े ग्राम गृहस्थ निवास बने हुए थे ;
खपरैलों में, कटुदू, करैलों की बेल के खूब तनाव तने हुए थे ।
जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पत्नी घरों में घने हुए थे ;
सब आर स्वदेश-स्वजाति समाज भलाई के ठान ठने हुए थे ।

(६)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था छवि छाई वसंत की कानन में ;
सब आर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़ चेतन के तन में मन में ।
निकले थे कपोत कपोती कहीं, पड़े झुण्ड में घूम रहे बन में ;
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन में ।

(७)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जाल को कौशल से;
वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े चले बच्चे अभिज्ञ न थे कुल से ।
नहीं जानते थे कि यहाँ पर है, कहीं दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से ;
बस फाँस के बाँस के बन्धन में कर देगा हलाल हमें बल से ।

(८)

जब बच्चे फँसे उस जाल में जा तब वे घबरा उठे बन्धन में ;
इतने में कबूतरी आई वहाँ, दशा देख के व्याकुल हो मन में ।

कहने लगी “ हाय हुआ यह क्या,” सुत मेरे हलाल हुए वन में ;
अब जाल में जाके मिलूँ इन से सुख ही क्या रहा इस जीवन में ।

(६)

उस जाल में जाके बहेलिए के ममता से कबूतरी आया गिरी ;
इतने में कपोत भी आया वहाँ, उस घोंसले में थी विपत्ती निरी ।
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ घटना की घटा वह घोर घिरी ;
नयनों से अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ।

(१०)

तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा हा ! अति कष्ट हुआ ;
निबलों ही को दैव भी मारता है ‘ य ’ प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ ।
सब सूना किया चली छोड़ प्रिया सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ ;
इस भाँति अभागा अतृप्त ही में सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ।

(११)

कल कूजन कैलि कलोल में मस्त हो बच्चे मुझे जो सुखी करते ;
जब देखते दूर से आता मुझे किलकारियाँ मोद से जो भरते ।
समुदाय के धाय के आयके पास उठाय के पंख नहीं टरते ;
वही हाय हुए असहाय अहो, इस नीच के हाथ से हैं मरते ।

(१२)

गृहलक्ष्मी नहीं जो जगाए रहा करती थी सदा सुख कल्पना को ;
शिशु भी तो नहीं जो उन्हीं के लिए सहता इस दारुण वेदना को ।
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यम-यातना को ।
अब मैं हीँ वृथा इस जीवन को रख कैसे सँहूँगा विडंबना को ।
सा० सो० द्वि०—८

(१३)

यहाँ सोचता था यों कपोत वहाँ चिड़ोमार ने मार निशाना लिया ;
गिर लोट गया धरती पर पत्ती बहेलिये ने मन माना किया ।
पल में कुल का कुल काल कराल ने यों यमलांक को भेज दिया ;
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह देखो निदर्शन है बढ़िया ।

—रूपनारायण पाण्डेय

अभ्यास

- १—वन-विहंगम के पाठ से क्या शिक्षा मिलती है ?
- २—कवूतरी और कबूतर की कथा वर्णन करो ।
- ३—शिकारी ने बच्चों तथा कवूतरी को कैसे पकड़ा ?
- ४—पहले पद्य की शब्द निरुक्ति (पद व्याख्या) करो ।

२४—बर्फ़ की बहार

जाड़े के दिन आ गये हैं । पहाड़ में बर्फ़ गिरने लगी है । चलो,
जाकर बाहर देखें । कैसा सुन्दर दृश्य है ! किस अप्सरा-लोक से
इस खिन्ना, दोना, मलिना, तापसी पृथ्वी-माना के ऊपर शीतल-
पुष्पों की अधिरल वर्षा हो रही है ! किस देवता ने ऐसे स्वच्छ,
श्वेत कुसुमों का अक्षय भांडार खोल दिया ।

यह देखो ! कैसा सुन्दर, स्वच्छ प्रकाश समस्त विश्व में व्याप्त
हो रहा है ! आकाश यद्यपि घनघटा से आच्छन्न है, आसपास
के पहाड़ यद्यपि कुहरे से ढके हुए हैं, तथापि यह कैसा उज्ज्वल



बर्फ से ढका हिमालय

आलोक अपनी झलक दिखला रहा है। किस अलबेली परी की यह मंद मधुर मुसकान है। हे स्वर्ग-निवासिनी कल्याणीया माता ! आज अचानक इस मर्त्य-लोक में तुम्हारा पुण्य आगमन देखकर बच्चों के हृदय की कली-कली खिल गई है। धूलि से मलिन पृथ्वी के ऊपर तुम्हारी शुभ्र, सुनिर्मल, कोमल शय्या बिछी हुई है, उसके ऊपर ढांटे ढांटे बच्चे आनन्द से उछल कूद मचा रहे हैं। तुम्हारी यह शय्या दुग्ध के फेन से भी अधिक श्वेत है। शरत्काल में चन्द्रमा के प्रकाश से उज्ज्वल, शुभ्र मेघ की शोभा उसकी सुन्दरता के आगे तुच्छ है। यह अनुपम है।

यह देखो ! वहाँ पर बच्चे बर्फ का मन्दिर बनाने में लगे हैं। किस अलबेले देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा आज इसके भीतर होगी। बच्चे जाड़े से काँप रहे हैं या देवता की भक्ति से गद्गद होकर विह्वल हो रहे हैं ? उनकी आँखें किस उल्लास से दीप्त हो रही हैं ?

हरे राम ! यह क्या मूर्ति की स्थापना पूरी तरह से होने भी न पाई थी कि वही 'भक्त' लड़के बर्फ के गोले बना कर उसी मूर्ति के ऊपर बरसाने लगे हैं, मनुष्य-प्रकृति ऐसी ही चंचल होती है, इसमें संदेह नहीं। जिसके साथ हम एक बार प्रीति लगा कर मित्रता करते हैं, कुछ ही समय के बाद उसी के विनाश में लग जाते हैं।

सर्वत्र कैसी शांति व्याप्त है। इस नीरवता में बीच बीच में बच्चों की किलकारी ऐसी जान पड़ती है, जैसे अर्द्धरात्रि में

पत्नीगण किसी कारण से चौंक चौंक कर निद्रा से जाग पड़ते हैं । हिम-कुसुमों की वर्षा उसी अविरल गति से, निःशब्द चली जाती है । क्या इस सन्नाटे में आज स्वर्ग-मर्त्य का मिलन होगा ?

लड़कों ! पहाड़ में जो बर्फ गिरती है वह क्या चीज़ है, बिना देखे तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते । गर्मों के दिनों में तुम जिस बर्फ का पानी पीते हो केवल ठंडक में उसकी तुलना हम पहाड़ी बर्फ से कर सकते हैं, अन्यथा, सूरत-शकल, रूप-रंग और आकृति-प्रकृति में दोनों में ज़मीन-आसमान का अंतर पाया जाता है । पहाड़ी बर्फ धुनी हुई रुई से भी ज्यादा सफेद होती है और रुई की तरह नर्म भी होती है । उस बर्फ से ज्यादा सुफेद कोई भी चीज़ दुनिया में हो सकती है, इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता । जब वह ताज़ी होती है तो बहुत कोमल होती है—फूल की तरह । पहाड़ी लोंग गुड़ के साथ उसे खाते हैं । पर जब आसमान साफ होने पर उसके ऊपर पाला पड़ जाता है तो वह पत्थर से भी ज्यादा सख्त हो जाती है और खाने पर शरीर को हानि पहुँचाती है । यद्यपि लोग धूप में बैठ कर उसे भी खाते हैं । बर्फ के गिरने पर सारी पृथ्वी ऐसी उज्ज्वल दिखलाई देती है जैसे चाँदनी बिछी हो और रात को जब चन्द्रमा का प्रकाश उसके ऊपर पड़ता है तो वह दृश्य ऐसा अनुपम हो जाता है कि शायद परिस्तान भी उसके आगे कोई चीज़ नहीं । देख देखकर आँखें नहीं थकतीं । ऐसा मालूम होता है कि संसार का सब कारबार झूठा है, और केवल यही दृश्य, यही सौंदर्य सत्य है ।

जब मैं छोटा बच्चा था, तो किनाबों में उत्तरी ध्रुव के निकट रहने वाले एस्किमो लोगों के सम्बन्ध में अनेक बातें पढ़ा करता था। उस देश में बारह महीने बर्फ रहती है। वह देश ही बर्फ का है। एस्किमो लोगों के मकान भी बर्फ के ही होते हैं। मुझे उन लोगों के जीवन पर ईर्ष्या होती थी। मैं उनके कष्टों की बात नहीं सोचता था और उन्हें बड़ा सुखी समझता था। मुझे इस बात पर बड़ा दुःख होता था कि ईश्वर ने मुझे क्यों ऐसे देश में पैदा नहीं किया। मैं सोचता था कि जिस व्यक्ति को आँखों के आगे रात दिन बर्फ का दृश्य वर्तमान है, उसे भूल-प्यास कभी नहीं सता सकती ! मैं बड़ा नादान था।

योरप के सभी लड़के बर्फ की बहार से परिचित रहते हैं क्योंकि वहाँ हर साल जाड़ों में बर्फ गिरा करती है। पर हमारे देश के बच्चे इस सम्बन्ध में दुर्भाग्यी हैं। जिन लड़कों ने अँगरेजी की कुछ भी कवितार्ये पढ़ी होंगी उन्होंने अवश्य बर्फ का उल्लेख पाया होगा। योरप के प्राचीनतम कवियों ने भी बर्फ का उल्लेख किया है। ग्रीस देश के महाकवि होमर ने अपने “ इलियड ” शीर्षक महाकाव्य में बर्फ का जिक्र किया है। युलिसीस नाम का एक वीर ग्रीक राजा जब कभी बालता है तो उसके मुँह से निकले हुए शब्दों की उपमा देते हुए वह कवि उन्हें घने हिम-कण बतलाता है। शेक्सपियर के नाटकों तथा वर्ड्सवर्थ, शेली आदि विलायती कवियों की कविता में भी बर्फ का उल्लेख है। पर हमारे भारतीय कवि ने जब

कभी तुषार-पात (बर्फ का गिरना) देखा ही नहीं तो वे उसके सम्बन्ध में लिखते कैसे ? पर कालिदास ने हिमालय का वर्णन किया है। उनके “ कुमारसम्भव ” काव्य में तो अधिक वर्णन हिमालय का ही है। बहुत सम्भव है वे हिमालय प्रदेश के ही निवासी थे और या तो काशमीर की तरफ रहते थे, या युक्तप्रान्त के उत्तरी पहाड़ों में, इतिहासज्ञों ने ऐसा अनुमान किया है। पर यह निश्चय है कि युवावस्था में वह पहाड़ छोड़ कर नीचे देश (मैदान) को चले आये थे और उज्जैन में रहने लगे थे। किन्तु अपनी जन्मभूमि की याद उन्हें बार बार आ जाया करती थी। इसलिए उन्होंने अपने मेघदूत काव्य में अलकापुरी के बहाने अपने जन्म-स्थान की ही गुण-गाथा गाई है। कुछ भी हां, हिमालय पर्वत बारह मास हिम से ढके रहते हैं। और उस हिम का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है कि वह “ राशीभूतः प्रतिदिनमिव ध्रुवकस्यादृहासः ” है। अर्थात् “ प्रति दिन शिबजी के अदृहास (विकट हँसी) के ढेर के समान इकट्ठा रहता है। ” संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का यह नियम है कि हँसी और यश की उपमा किसी श्वेत और शुभ्र वस्तु के साथ दी जाती है। इस हिसाब से कालिदास की यह उपमा अनुपम है। शिव जी हिमालय-पर्वत (कैलाश) में रहते हैं। उनका हास्य बड़ा विकट होता है, और जिसने देखा है वह जानता है कि बर्फ में चारों तरफ ढके हुए हिमालय पर्वत का दृश्य भी कम विकट नहीं होता।

कुछ भी हो, कालिदास ने गिरती हुई बर्फ का वर्णन कहीं नहीं किया है। इसका कारण क्या है, हम कह नहीं सकते। लड़को, यदि तुम्हारा भुकाव कविता की ओर है, तो मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि अपने जीवन में एक बार जाड़े के दिनों में पहाड़ की सैर करके तुषार पात के दृश्य को अवश्य देख आना। उसमें तुम्हारे हृदय में बड़े बड़े अच्छे अच्छे विचार और भाव पैदा होंगे।

—इलाचन्द्र जोशी

अभ्यास

- १—बर्फ कैसे बनती है और वह पहाड़ों पर किस समय गिरती है ?
- २—बर्फ लोगों के किस काम आती है ?
- ३—भारतीय कवियों ने बर्फ का वर्णन क्यों कम किया है ?
- ४—मनुष्य प्रकृति चञ्चल क्यों कही गई है ?
- ५—‘ इलियड ’ ‘ कुमार सम्भव ’ और ‘ अलकापुरी ’ के विषय में क्या जानते हो ?

२५—घनश्याम देखे ?

मुझे मिले एक महानुभाव,

बोले अजी ‘ श्रीधर ’ यह बताओ।

क्या स्वर्ग में या यमुना-निकुञ्ज में,

कहीं किसी ने घनश्याम देखे ?

क्या वे बसें मन्दिर में नृपों के,

या दृष्टि आते कवि-कल्पना में।

या योगियों की गहरी समाधि में,
 कभी किसी ने घनश्याम देखे ?
 मैंने कहा आज निकुञ्ज शून्य है,
 सूनी पड़ी है ब्रज-बीथिकाएँ ।
 न कूल में श्रीयमुना-निकुञ्ज में,
 कहीं किसी ने घनश्याम देखे ।
 न तो बसें क्षीर-समुद्र ही में,
 न द्वारका के कनकाभिराम में ।
 न मन्दिरों के गृह गर्भ ही में,
 न स्वर्ग ही में घनश्याम देखे ।
 न योगियों की गहरी समाधि में
 न ज्ञान के तत्त्वमसि प्रमाण में ।
 न ध्यान में औ कवि की न तान में,
 न मान ही में घनश्याम देखे ।
 अवश्य ही वे बसते वहाँ है,
 जहाँ दया की सरिता अशेष है ।
 है नित्य आनन्द विराजता जहाँ,
 मैंने वहाँ श्रीघनश्याम देखे ।
 छाया जहाँ नित्य पवित्र प्रेम है,
 जहाँ यही एक अनन्त नेम है ।
 निष्काम राधा सम प्रेम है जहाँ,
 प्यारे वहाँ श्रीघनश्याम देखे ।

दरिद्र के जीर्ण-जरा-कुटीर में,
 किसान के श्यामल शून्य खेत में ।
 विश्वास में निष्ठ-प्रतिज्ञ भक्त के,
 प्रसन्न होते घनश्याम देखे ।
 दुःखी जनों की गहरी उसाँस में,
 औ पीड़ितों की करुणार्द्र आह में,
 सहायता-पेक्ष्य सनीर नैन से,
 हैं भाँकते श्रीघनश्याम देखे ।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

अभ्यास

- १—लेखक के अनुसार घनश्याम का दर्शन किन किन स्थानों में होता है ?
- २—कनकाभिराम, घनश्याम, जीर्ण-जरा-कुटीर में समास बताओ ।
- ३—अर्थ लिखो—

निकुञ्ज, कृज, निष्काम, जरा और सहायतापेक्ष्य ।

२६—रेल

इस पाठ में रेलों के बारे में विचार किया जायगा । डाक का रेलों से घनिष्ठ सम्बन्ध है । रेलों की सहायता से ही डाक का वर्तमान प्रबन्ध चल रहा है ।

यात्रा की सुविधा—रेलों से लोगों को यात्रा करने की बड़ी सुविधा हो गयी है। पहले आदमी पैदल जाते थे, या घोड़ों पर सवार होकर, या बैलगाड़ी और घोड़ागाड़ी आदि में। इनमें सफर तय करने में समय बहुत लगता था तथा थकावट अधिक होती थी। अब आजकल साइकिल, मोटर, ट्राम्वे, आदि अनेक सवारियाँ चल पड़ी हैं। हवाई जहाजों का भी प्रचार बढ़ता जा रहा है। परन्तु सर्वसाधारण के लिये लम्बी लम्बी यात्रा करने की और सवारियों में इतनी सुविधा नहीं होती जितनी रेलों में। तुम रोज़ स्टेशनों पर देखते होगे कि हजारों आदमी रेल का टिकट लेकर एक जगह से दूसरी जगह जाते आते हैं।

प्रत्येक टिकट पर यह ऊपा रहता है कि वह किस स्टेशन से किस स्टेशन तक के लिये है और उसका मूल्य क्या है। उस पर तारीख और नम्बर भी लिखा रहता है। यदि किसी का टिकट खो जाय तो नम्बर और तारीख बताने से उसका काम चल सकता है, नहीं तो उसे फिग दाम भरने पड़ते हैं।

रेलों से अन्य लाभ—स्टेशनों पर सवारी गाड़ी के अलावा तुमने मालगाड़ियाँ भी देखी होगी। इनमें हजारों मन माल इधर से उधर भेजा जाता है। इस प्रकार रेलों से व्यापार की खूब वृद्धि होती है। यदि देश में एक जगह अकाल पड़ रहा हो तो खाने के पदार्थ दूसरी जगह से, जहाँ वे अधिक हों, जल्दी ही उस जगह

लाये जाकर, बहुत से आदिमियों को भूखा मरने से बचाया जा सकता है । ❀

रेलों द्वारा सरकार को राज्य प्रबन्ध के लिए पुलिस या फौज एक जगह से दूसरी जगह भेजने में भी बड़ी सुविधा तथा किफायत होती है । इसके अतिरिक्त रेलों से मनुष्यों के विचारों तथा रहन सहन पर भी बड़ा प्रभाव पड़ता है । देश के जिन भागों में रेलें चलती हैं, वहाँ के लोगों को एक दूसरे से मिलने का अवसर बहुत आता है । भिन्न जातियों के तथा अलग अलग धर्मों को मानने वाले आदिमी परस्पर मिलने जुलने से एक दूसरे का अधिक जानने लगते हैं और उनमें सहयोग और सहानुभूति का भाव बढ़ जाता है । भारतवर्ष में कृत काल के विचारों को दूर करने में रेलों ने बड़ी सहायता की है ।

रेलों का विस्तार—भारतवर्ष में रेलों का काम लार्ड डलहौजी के समय में आरम्भ हुआ । बम्बई से चलने वाली जी० आई० पी० रेलवे, तथा कलकत्ते से चलने वाली ईस्ट इंडियन रेलवे सब से पुरानी हैं । ये १८४६-४७ में आरम्भ हुई । इन्हें बनवाने में सरकार ने इस बात का ठेका लिया कि कम्पनियाँ उसकी सम्मति से जो

❀ रेलों से एक हानि भी है । बहुत से पदार्थों को व्यापारी उन देशों को भेज देते हैं , जहाँ वे मँहगे हों, फिर वे पदार्थ हमारे देश में पहले की तरह सस्ते नहीं रहते, विदेशों में निर्यात हो जाने के कारण उनका भाव बढ़ जाता है ।

रूपया रेलों के काम में खर्च करेंगी, उस पर उन्हें पांच फी सदी मुनाफ़ा मिलेगा, यदि इससे कम रहा तो सरकार उसकी भरपायी कर देगी और जो ज्यादा रहा उसमें से आधा सरकार लेगी और आधा कम्पनियाँ। हिसाब हर छः माह में होता था। ये लाइनें सरकार की निगरानी में बनवानी होती थीं और सरकार को कुछ समय बाद उन लाइनों को खरीदने का अधिकार होता था। इस ढंग से काम होने में खर्च बहुत अधिक हुआ। कम्पनियों ने क़िफ़ायत को आंर ध्यान नहीं दिया और मनचाहा रूपया खर्च कर डाला। इसलिये पोछे इस ढंग में सुधार किया गया। सरकार अपनी लाइनें भी बनाने लगी।

भारतवर्ष में अब अड़तीस हजार मील से अधिक में रेलवे लाइन फैली हुई है। बहुत सी रेलवे लाइनों की मालिक सरकार है। कुछ देशी राजाओं की हैं तथा थोड़ी सी लाइन ज़िला बांडों का उत्साहित करके बनवायी गयी हैं। रेलवे लाइनों की चौड़ाई भिन्न भिन्न स्थानों में अलग अलग है। छोटी लाइनें दो ढाई फ़ीट की और बड़ी लाइनें ५ से ५½ फ़ीट तक की हैं।

रेलों का प्रबन्ध—भारतवर्ष में अधिकतर रेलवे लाइनों का प्रबन्ध सरकार के हाथ में है। कम्पनियों की रेलों पर भी सरकारी देख रेख रहती है। सब रेलों पर देख रेख का काम एक रेलवे बोर्ड करता है, इसमें एक सभापति और दो अन्य सदस्य होते हैं।

जिन रेलों का प्रबन्ध कम्पनियाँ करती हैं, उनका 'बोर्ड-आफ़ डायरेक्टर' लंदन (इंगलैंड) में है। इस बोर्ड की ओर से भारत

वर्ष में एक 'एजन्ट' रहता है। इस एजन्ट के नीचे ट्रैफिक मैनेजर, चीफ इंजीनियर और स्टेशन मास्टर आदि कर्मचारी होते हैं। सरकारी रेलों में भी ऐसे ही कर्मचारी काम करते हैं।

अभ्यास

१—रेलों का प्रबन्ध कौन करता है ?

२—रेलों से जो लाभ तुम्हें होते हों उनके नाम लिखो।

३—बड़ी ज़ाइन और छोटी ज़ाइन के पटरियों की चौड़ाई कितनी होती है ?

४—शब्दार्थ लिखो —

सहयोग, सहानुभूति, किरायत, सदस्य, सम्मति, कर्मचारी।

२७—बम्बई का समुद्र-तट

(सायङ्कालिक दृश्य)

सायङ्काल हवा समुद्र तट की नैराग्यकारी महा,
 प्रायः शिञ्जित सभ्य लोग नित ही आते इसी से वहाँ।
 बैठे हास्य-विनोद मोद करते सानन्द वे दो घड़ी,
 सो शोभा उस दृश्य की हृदय को है तृप्ति देती बड़ी ॥ १ ॥
 सन्ध्या को गिरतीं दिनेश-कर की नौकें ललाईं सर्नीं,
 होती है तब दिव्य धारिनिधि की शोभा मनोमोहिनी।
 नीचे से जब बार बार उठती ऊँची तरङ्गावली,
 आती है बढ़के सु-दूर फिर भी जाती वहाँ ही चली ॥ २ ॥

छोटे और बड़े जहाज़ जल में देखो वहाँ वे खड़े,
 सो भी दृश्य विचित्र किन्तु हमको वे हानिकारी बड़े ।
 ले जाते घर-वस्तु देश भर की जानें कहाँ की कहाँ,
 लाते केवल ऊपरी चटक की चीज़ें विदेशी यहाँ ॥ ३ ॥

है उद्यान महा-मनोहर जहाँ विख्यात वृक्षावली,
 फूली है कुसुमावली नव-नवा सौरभ्य आती चली ।
 वैठी स्वागत सी जहाँ कर रही प्यारी विहङ्गावली,
 चित्ताकर्षक .खूब वारिनिधि की आनन्ददायी थली ॥ ४ ॥

आते हैं दिन के थके जन सदा सन्ध्या हुए पै यहीं,
 प्यारी मन्द सुगन्ध-शीतल हवा अन्यत्र पाते नहीं ।
 दे के स्पर्श समीर .खूब करती आतिथ्य सेवा तथा,
 खेती है श्रम सर्व और उनकी सारी मिटाती व्यथा ॥ ५ ॥

मेमें मञ्जुल पारसीक नवला-नारी दिखाती अदा,
 आती हैं सब सभ्य भव्य महिला प्रायः सदा सर्वदा ।
 वे स्वाधीन सभी, समाज निज से स्वातन्त्र्य पाई हुई,
 आतीं जो मरु-वासिनी वह कथा है सर्वथा ही नई ॥ ६ ॥

सुभग-सदन-पंक्ति प्रान्त में हैं दिखाती,

घर घर सुखमा को वाटिका है बढ़ाती ।

विकसित कुसुमावली .खूब सर्वत्र छाई,

सुरुचिर हरियाली मालियों की लगाई । ७ ॥

मदबस-मतवाली जो वहाँ कामिनी हैं,

अनुपम-झुवि वाली रूप-शाली बड़ी हैं ।



बम्बई का समुद्र-तट

दृग-पथ करने से चित्त आता यही है,
सुर-पुर-बनिता ही क्या यहाँ आ गई हैं ॥८॥

शोभा समुद्र तट की अवलोकनीय,
पाता प्रमोद मन देख उसे मदीय ।

यथार्थ वर्णन न हो सकता तदीय,
है दृश्य केवल अहो ! वह दर्शनीय ॥९॥

—कन्हैया लाल पोद्दार

अभ्यास

१—बम्बई के समुद्र-तट का वर्णन करो ।

२—बम्बई से जहाज कहाँ को जाते हैं ?

३—इनके अर्थ लिखो—

नैरोग्यकारी, तरङ्गावली, उद्यान, कुसुमावली, सौरभ्य, चित्ताकर्षक,
अन्यत्र, नवला, मंजुल, स्वातन्त्र्य, सुर-पुर-बनिता, मदीय, तदीय,
मदबल, सुभग-सदन-पंक्ति ।

४—इन समासों के नाम लिखो—

सुभग-सदन-पंक्ति, सुर-पुर-बनिता, मरु-वासिनी, नवला-नारी,
दिनेश-कर, वर-वस्तु, महा-मनोहर ।

२८—सच्चरित्रता

यदि इस संसार में मनुष्य को आदर्श पुरुष बनाने वाला कोई सर्वोत्तम गुण है तो वह सच्चरित्रता है । मनुष्यों की मानसिक सद्वृत्तियों को सर्वाङ्गीण समुन्नत और उत्कृष्ट बनाना तथा

कर्त्तव्यनिष्ठ होकर महाजनानुमोदित और विवेक प्रदर्शित पथ से अपना शान्त और सरल जीवन बिताना ही सच्चरित्रता है। तन, मन, ध्वन और कर्म से दूसरों का अनिष्ट न करने, सब के साथ सहानुभूति तथा अनुग्रह रखने और उपयुक्त पात्र में दान देने ही को शास्त्रकारों ने सच्चरित्रता कहा है।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा सच्चरित्र बनने की चेष्टा करें। ऋत्रों को तो सर्वोपरि इसका अभ्यास करना उचित है क्योंकि उनके जीवन का प्रातःकाल ऋत्रावस्था ही है। सच्चरित्र बनने की चेष्टा करने वालों को आन्तरिक संकल्प में दृढ़प्रतिज्ञ होकर सम-योचित आत्मसंयम और कठोर आत्म-शासन करना श्रेयस्कर है। अपने को अपने ही में वशीभूत रखना आत्म-शासन और अपने को सब प्रकार की उच्छृङ्खलता से रोकना आत्मसंयम है। यदि ऐसा बनकर अपने भाव और कार्य को सन्पथ में प्रवृत्त करे तो मनुष्य निस्सन्देह सच्चरित्र हो सकता है। सच्चरित्र व्यक्तियों के सद्गुण सदाचार और सदुदाहरण सदा समक्ष रखकर तदनुरूप जीवनयापन की प्रबल आकांक्षा, तथा उत्तम उत्तम ग्रन्थों और जीवनचरित्रों का अध्ययन चरित्र-शिक्षा के प्रबल सहायक हैं। सत्यानुराग, परापकारेच्छा, आज्ञानुवर्तिता और सांसारिक सुखदुःख में अविचलचित्तता होने से ही सच्चरित्रता की दृढ़ता हो सकती है।

जो मनुष्य अपने दोष-दर्शन में समर्थ नहीं है जो दोषों को दूर करने में शिथिलता करता है, जो पाप की आपातमधुरता में

प्रलुब्ध होकर प्रवृत्त होता है, जो कुत्सित ग्रन्थों की कुचरित्रमय कथाएँ और कल्पनाएँ पढ़कर मन में कुविचार पैदा करता है, जो कुसंग में पड़कर अपने को कलुषित करने का सूत्रपात करता है, वह कभी सच्चरित्र नहीं हो सकता। सदाचार शिक्षार्थी न ऐसे काम करें और न ऐसे चरित्रहीन व्यक्तियों का संसर्ग ही करें, क्योंकि दुराचारी का पापमय और दुःखमय परिणाम और अधःपात होता है वह सब को विदित ही है। जो मनुष्य सच्चरित्र है उसके हृदय में सन्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, संयमशक्ति प्रभृति सारी गुणावलियाँ लहरें मारती हैं। दया, स्नेह, क्षमा, विनय, भक्ति, प्रीति आदि कोमल वृत्तियाँ संचालित होती रहती हैं, श्रमशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता, प्रतिभा आदि शक्तियाँ विकसित होती हैं। सच्चरित्र व्यक्ति क्रोध, द्वेष, अविनय, अहंकार, प्रलोभन आदि दुर्वृत्तियों को दूर करता है। न्यायविमुखता, उच्छृंखलता, असत्यता आदि दुर्गुणों का पास फटकने नहीं देता। चरित्रवान् व्यक्ति माता पिता परिजन तथा गुरुजनों को सदा सन्तुष्ट करने की चेष्टा किया करता है। स्वजाति और स्वदेश के कल्याणार्थ आत्मत्याग करता है और विवेक-परायणता तथा कर्त्तव्य-पालन में उत्साह दिखलाता है। सच्चरित्र मृत्युलोकनिवासी होने पर भी अमर, अकिञ्चन होने पर भी सम्राट् और शास्त्रज्ञान-विहीन होने पर भी ज्ञानी है। यही क्यों, सच्चरित्र व्यक्ति जन साधारण के लिये आदर्श पुरुष है।

विद्या बुद्धि और चरित्र से कोई अटूट और अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। विविध विद्याओं की अभिज्ञता और चरित्र की पवित्रता भिन्न भिन्न बात है। मूर्ख भी सुचरित्र हो सकता है और विद्वान् भी दुराचारी। इसके दृष्टान्तों का कमी नहीं। पर विद्या के साथ सच्चरित्रता का संयोग बांझनाथ है। सच्चरित्र निरक्षर की अपेक्षा दुश्चरित्र साक्षर निवृष्ट है। यदि दुराचारी विद्या-बुद्धि-सम्पन्न धनाढ्य भी हो तो मणिभूषित सर्प के समान त्याज्य है। समझना चाहिये कि दुराचारी का विद्याभ्यास और अर्थोपाजन समाज को बड़ा अनिष्टकर है। अकिञ्चन चरित्रवान् व्यक्ति चरित्र-हीन करोड़पति का अपेक्षा महान् और सुखी है।

जिन कारणों से मनुष्य प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है और जिन गुणों के कारण मनुष्य अपने नाम को सार्थक करता है उन सब का एकाधार सच्चरित्रता है। सुचरित्र-बल ही प्रधान बल है। निष्कलंक चरित्र ही अमूल्य सम्पत्ति है। सारी उन्नतियों का मूल सच्चरित्रता है। महत्त्व और गौरव का परिचायक सच्चरित्रता ही है। सच्चरित्रता होना ही मानवजीवन का प्रधान लक्ष्य और श्रेष्ठ कर्तव्य है। इससे सब को सुचरित्र बनने की सदा चेष्टा करनी चाहिये।

—बाल कृष्ण भट्ट

अभ्यास

१—सच्चरित्रता किसे कहते हैं ?

२—आत्मसंयम क्या है ?

३—सच्चरित्र मनुष्य को किन किन बातों से बचना चाहिये ?

४—सच्चरित्रता पर एक लेख १० पंक्तियों का लिखो ।

२६—सूरदास के पद

(१)

मैया कबहिं बढेगी चोटी ।

किती बार मोहि दूध पियत भइ यह अजहूँ है ज़ोटी ॥
 तू जो कहति बल की बेनी ज्यों हैं हैं लाँची मोटी ।
 काढ़त गुहृत नहावत ओझत नागिन सी भैं लोटी ॥
 काचो दूध पियावत पचि पचि दंत न माखन रोटी ।
 “सूर” श्याम चिरजीवां दाँउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

(२)

खेलन अब मेरी जात बलैया ।

जबहिं मोहि देखत तरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया ॥
 मोसों कहत पृत बसुदेव को देखकी तेरी भैया ।
 मोल लियो कछु दे बसुदेव का करि करि जतन बढैया ॥
 अब बाबा कहि कहत नंद को यशुमति का कहै भैया ।
 ऐसहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चली खिसैया ॥
 पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।
 “सूर” नंद बलराम हि धिरयां सुनि मन हरष कन्हैया ॥

(३)

जँवत श्याम नंद का कनियाँ

ककुक खात ककुक धरनि गिरावत क्वि निरखत नंद रनियाँ ॥
 बरी बरा बेसन बहु भाँतिन व्यंजन विविध अनगनियाँ ।
 डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनियाँ ॥
 मिश्रो दधि माखन मिश्रित कर मुख नावत क्वि धनियाँ ।
 आपुन खात नन्द मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ ॥
 जो रस नन्द यशोदा बिलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ ।
 भोजन करि नन्द अंचवन कीन्हों माँगत "सूर" जुठनियाँ ॥

(४)

चंद्र खिलौना लैहों मैया मेरी, चंद्र खिलौना लैहों ॥
 धौरी का पय पान न करिहों बेनी सिर न गुथैहों ।
 मोतिन माल न धरिहों उर पर भँगुली कंठ न लैहों ॥
 जेहों लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न पेहों ।
 लाल कहैहों नन्द बबा को तेरो सुत न कहैहों ॥
 कान लाय ककुक कहत यशोदा दाउहिं नाहिं सुनेहों ।
 चंदहू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया व्यैहौ ॥
 तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं व्याहन जेहों ।
 "सूरदास" सब सखा बराती नूतन मंगल गेहों ॥

(५)

मैया मैं न चरैहों गाइ

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाई पिराइ ।
 जो न पत्याहि पूछ बलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ ॥

में पठवति अपने लरिका कूँ आवे मन बहराइ ।

“सूर” श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ ॥

अभ्यास

१—अर्थ लिखो—

व्यंजन, बिलम्बत, भुवनियाँ, धौरी, नवल और फ्याहि ।

२—वसुदेव व देवकी के विषय में क्या जानने हो ?

३—कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करो ।

३०—सर भाण्डारकर

संसार के मनुष्यों का हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं. एक साधारण, दूसरे असाधारण । साधारण लोगों की ओर हमारा ध्यान कभी आकृष्ट नहीं होता । ये रोज़ ही जन्म लेते और मरते रहते हैं ; किन्तु असाधारण लोगों का ढँग ही दूसरा होता है । उनके जन्म लेने से देश में एक हलचल मच जाती है और उनके मरने से जो स्थान रिक्त होता है उसकी किसी प्रकार पूर्ति नहीं हो सकती । उनमें एक ऐसी विशेष महत्ता होती है जो सर्वथा उन्हीं की होती है । वे मनुष्य-जीवन के लिये एक आदर्श स्थापित करते हैं । सैकड़ों मनुष्य का उस आदर्श से नूतन स्फूर्ति मिलती है । जीवन के कष्टकाकीर्ण पथ पर अग्रसर होते हैं और जनता उनके बनाये हुए मार्ग पर चलने लगती है वस यही साधारण और असाधारण मनुष्यों में सब से बड़ा भेद है । एक नेता होता है, दूसरा अनुचर । यही कारण है कि वे देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं । उनकी प्रतिष्ठा किसी देश-विशेष में

सङ्कुचित नहीं रहती। संसार एक स्वर से उनका आदर करता है। वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति कहलाते हैं। इतिहास उनको 'महान्' की उपाधि से विभूषित करता है। कई युग-युगान्तर हो जाते हैं, सैकड़ों क्रान्तियाँ हो जाती हैं। पर तो भी इतिहास के स्वर्ण-पृष्ठों पर सदैव अक्षय बना रहता है वास्तव में हमारे सर भाण्डारकर ऐसे ही असाधारण पुरुषों में से थे।

वैसे तो असाधारण व्यक्तियों के विचार प्रायः सभी विषयों पर प्रौढ़ और गम्भीर होते हैं। परन्तु उनका एक विशेष क्षेत्र होता है। उसी में वे सबसे अधिक उन्नति करते हैं। सर भाण्डारकर का यह विशेष क्षेत्र था शिक्षा। इन्होंने धार्मिक और सामाजिक सुधार में भी बहुत काम किया है। वे बम्बई-प्रान्त की प्रार्थना-समाज के सबसे बड़े नेता थे। मराठी-भाषा में इन्होंने जो भजन और धार्मिक लेख लिखे हैं उनके द्वारा आज भी सैकड़ों लोगों में धार्मिक भाव और धार्मिक स्फूर्ति जाग्रत हो रही है। ये धार्मिक सुधार के कट्टर पक्षपाती थे। यहाँ तक कि कभी कभी इनका धर्म-सुधार-भाव कटुता तक पहुँच जाता था; परन्तु यह कोई विलक्षण बात नहीं। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की आज जो अवस्था है उसे देख कर सभी लोगों को आवेश हो सकता है किन्तु धार्मिक और सामाजिक सुधार के विषय में इनकी नीति जितनी उग्र थी, राजनैतिक विषयों में ये उतने ही नरम थे। अधिकतर ये सरकारी नीति का ही समर्थन करते थे तो भी आज से कोई ५० वर्ष पहले जब दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतवासियों की

अधिकार-हानि और अन्याचार की खबर भारतवर्ष में आई थी तब ये भी अपने एकान्त-सेवन से निकल पड़े थे। उस समय इन्होंने पुरा की विशाल प्रतिष्ठा सभा का सभापतित्व ग्रहण किया था।

पर असल बात तो यह है कि ये सब बातें इनके लिए गौण थीं। ये एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ शिक्षक थे। इनका सारा जीवन पढ़ने और पढ़ाने ही में बीता, इनका सबसे अधिक ध्यान इसी ओर था। यों तो आज भी देश में एक से एक दिग्गज विद्वान् और संस्कृतज्ञ परिणत मौजूद हैं : किन्तु संस्कृतज्ञ और पुरातत्त्ववेत्ता होने के कारण देश और विदेशों में जितनी ख्याति इन्होंने प्राप्त की है, उतनी और किसी ने नहीं। प्राचीन जैली से संस्कृत पढ़ने के अतिरिक्त इन्होंने विवेचनात्मक और तुलनात्मक पद्धति की भी शिक्षा प्राप्त की थी। पूर्वीय पद्धति का गम्भीरता और व्यापकता के साथ साथ इन्होंने पश्चिमी पद्धति के द्वारा क़ांटी क़ांटी बातों के अन्वेषण करने की भी यथेष्ट क्षमता प्राप्त की थी। यही कारण है कि ये बेचर सरीखे प्राच्य-विद् विद्वानों से टकर ले सके। इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत-पाठ्य पुस्तकों की जो एक ग्रन्थमाला तैयार की है उससे विद्यार्थियों का बड़ा उपकार हुआ है। आज-कल हजारों विद्यार्थी उन्हीं पुस्तकों के द्वारा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

डाक्टर भागडारकर का जन्म ६ जुलाई सन् १८२७ को एक महाराष्ट्र-ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके माता पिता गरीब थे।

पहले इन्हें रत्नगिरि के स्कूल में शिक्षा मिली और फिर बम्बई के एल्फ़िन्स्टन कालेज में भरती हुए। यहाँ इनको दादा भाई नौरोजी का शिष्यत्व ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दादा भाई ने उसी समय इनकी बाल-प्रतिभा को ताड़ कर इनके उज्ज्वल भविष्य की घोषणा कर दी थी। कालेज से निकलते ही ये दक्षिण-कालेज के फ़ेलो बना दिये गये। यहाँ इनकी मिस्टर हावर्ड से भेंट हुई, इन्हीं के प्रोत्साहन से ये संस्कृत के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए।

सन् १८६३ में भाण्डारकर ने कानून पढ़ने का विचार किया ; किन्तु इसी समय इनको हैदराबाद के एक स्कूल की हेडमास्टरी की जगह मिल गई। इन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। थोड़े ही दिनों बाद ये रत्नगिरि के अपने ही हाई स्कूल के हेडमास्टर हो गये। इनके सुयोग्य प्रबन्ध, सहृदय व्यवहार एवं प्रवीण शिक्षाप्रणाली के कारण थोड़े ही दिनों में रत्नगिरि का स्कूल चारों ओर प्रसिद्ध हो गया। ये अपने स्कूल के नवयुवक विद्यार्थियों का जीवन एक नये साँचे में ढालने लगे। ये वास्तव में एक प्राचीन कालीन गुरु थे। विद्यार्थियों के विचार एवं चरित्र पर मौखिक उपदेशों के द्वारा वह प्रभाव नहीं पड़ सकता जो स्वयं आदर्श चरित्र से पड़ता है। इनकी छत्र-छाया में बालक अपने आप सुधरने लगे। थोड़े ही दिन में इनकी हेडमास्टरी की ख्याति दूर दूर फैल गई।

इसके बाद सन् १८६८ में ये अपने एल्फिंसटन कालेज में अस्थायीरूप से संस्कृत के प्राफ़ेसर नियुक्त किये गये। यहाँ भी इनके नवीन ढँग एवं विषद व्याख्या के कारण कालेज की संस्कृत कक्षाएँ ठसाठस भरने लगीं। सन् १८७२ में कालेज की संस्कृत प्राफ़ेसरी स्थायीरूप से खाली हो गई। उस समय भाण्डारकर की जैसी प्रशंसा हो रही थी, उससे लोगों को यही आशा थी कि इनके सिवा और कोई इस पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु चाहे अधिकारियों का पक्षपात हो और चाहे भाग्य का फेर, उस समय भाण्डारकर का यह प्रोफ़ेसरी न मिल सकी। एक दूसरे सज्जन डाक्टर पीटर्सन बाहर से बुला कर, जो इनसे कहीं क़ांटे थे, इस काम पर नियुक्त कर दिये गये। इससे भाण्डारकर का बड़ा धक्का लगा; परन्तु इन्होंने धैर्य के साथ उसे सहन कर लिया। ये बराबर ७ साल तक डाक्टर पीटर्सन के नीचे काम करते रहे। वास्तव में विघ्न-बाधाएँ किसी होनहार व्यक्ति का धैर्यच्युन नहीं कर सकतीं। सफलता उनकी चेरी होती है।

सन् १८७६ में पूना के डेक्कन कालेज के संस्कृत-प्राफ़ेसर बिलहान छुट्टी पर गये और उनके स्थान पर भाण्डारकर काम करने के लिए बुलाये गये। सन् १८८४ के अन्त में वह स्थान स्थायीरूप से खाली हो गया। अब फिर प्रश्न उठा कि इस स्थान पर किसकी नियुक्त हो। एक जर्मन-प्राफ़ेसर बाहर से इस कार्य के लिए बुलाया ही जाने वाला था कि लोगों ने जार के

साथ सरकार से इस पक्षपात का प्रतिवाद किया। तब कहीं बड़ी कठिनाई के बाद ये उस स्थान में नियुक्त हो सके। विद्यार्थियों में इनकी लोक-प्रियता बढ़ती ही गई। सन् १८६३ में ये गवर्नमेंण्ट सर्विस से अलग हो गये।

विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर और परीक्षक रहने के अतिरिक्त ये १८७३ से १८८२ तक उसकी सिंडीकेट समिति के सभासद् भी रहे और उस समय उसके सञ्चालन में इनका बड़ा हाथ भी रहा। नौकरी छ्वाड़ने के बाद ये विश्वविद्यालय के चाइसचांसलर नियुक्त किये गये। इस प्रकार माना विश्वविद्यालय ने इनकी विद्वत्ता और सेवाओं का यथोचित सम्मान कर दिया।

यह तो हुआ इनकी जीवनचर्या का संक्षिप्त उल्लेख। किन्तु इस प्रकार इनके साहित्यिक कार्यों का वर्णन कर देना बड़ा कठिन है। इनका साहित्यिक जीवन इंग्लैंडन एण्टीक्वेरी के जन्म के साथ प्रारम्भ होता है। यह पत्र जेम्सवर्जेस ने पूर्वीय विद्वानों के अन्वेषणों के प्रकाशित करने के लिए सन् १८७२ से निकालना प्रारम्भ किया था। डाक्टर भागडारकर रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई-शाखा के भी बहुत दिनों तक सदस्य रहे। इस संस्था का प्रादुर्भाव सन् १८०४ में हुआ था। भागडारकर के पहले केवल दो ही हिन्दुस्तानी उसके सदस्य हो सके थे, एक मानक जी पारसी और दूसरे भाऊदाजी। किन्तु भागडारकर की विद्वत्ता ने बहुत जल्दी उसके द्वार खुलवा लिए। इन्होंने उस समय उक्त सोसाइटी के जनरल और इंग्लैंडन एण्टीक्वेरी में

इतने अधिक और एक से एक बढ़कर गवेषणापूर्ण लेख लिखे कि सर्वत्र इनकी विद्वता की धाक जम गई। सन् १८७२, ७३ और ७४ में इनका बर्लिन के प्रोफ़ेसर बेयर के साथ पतञ्जलि के काल-निर्णय के विषय में वादविवाद छिड़ गया। अन्त में इन्होंने सिद्ध कर दिया कि पतञ्जलि ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व हुए थे। आज कल यही काल-निर्णय सर्वग्राह्य हो गया है। वास्तव में भाण्डारकर की वह गवेषणा बहुत ही महत्तापूर्ण है, क्योंकि इसके पहले ईसा के पूर्वकालीन संस्कृत साहित्य की तिथियों का कोई ठीक ठीक पता ही नहीं चलता था। यही नहीं, भाण्डारकर ने और भी योरपीय विद्वानों के कई कपोलकल्पित मतों को छिन्न भिन्न किया है। एलिस महोदय की राय थी कि महाभारत की रचना ईसा की सोलहवीं शताब्दी में हुई है। इस समय यद्यपि इस सम्मति पर विचार करना भी हँसी सी मालूम होती है; तथापि उस समय ऐसी बहुत सी असङ्गत बातों का प्रचार हो रहा था। सन् १८६४ में डबलिन के एक प्रोफ़ेसर ने तो यहाँ तक कह डाला था कि संस्कृत कुछ थोड़े से कूटनीतिज्ञ और चतुर ब्राह्मणों की मन-गढ़न्त भाषा है और संस्कृत का सारा साहित्य लोगों को धोखा देने के लिये इन्हीं ब्राह्मणों ने बना डाला है। भला, इस खोज की भी कोई हद है। परन्तु भाण्डारकर ने एक लेख लिख कर इनके सिद्धान्त की धजियाँ उड़ा दीं और फिर उस दिन से किसी ने उसका प्रतिपादन करने का साहस नहीं किया। सन् १८७४ में भाण्डारकर ने वेदों के ऊपर भी एक महत्वपूर्ण

लेख लिखा था। इसी वर्ष इनको लन्दन में होने वाली पृथ्वी के इतिहास से प्रेम करने वाले सज्जनों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की ओर से निमन्त्रण मिला; किन्तु ये कुछ घरेलू मामलों के कारण उसमें सम्मिलित न हो सके। पर इन्होंने नासिक की प्रशस्तियों के ऊपर एक लेख लिख कर वहाँ भेजा, उसमें बहुत सी नई नई ऐतिहासिक बातें बताई गई थीं। इस लेख का वहाँ बड़ा आदर हुआ, और भाण्डारकर की ख्याति कई गुना अधिक बढ़ गई। दूसरे ही वर्ष ये रायल एशियाटिक सोसाइटी के सम्मानित सदस्य बना लिये गये। थोड़े दिन बाद विल्सन की स्मृति में भाषा-विज्ञान की कक्षा खोली गई और सन् १८७६ में ये उसके प्रथम व्याख्यानदाता नियुक्त हुए। यहाँ भारतीय भाषा-विज्ञान के विषय पर इन्होंने जो व्याख्यान दिये वे साहित्य की स्थायी चीज़ हैं। सन् १८९४ में वे पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए हैं। सन् १८७६ में बम्बई सरकार ने इनको संस्कृत की पाण्डु लिपि के अनुसन्धान का काम सौंपा। यह समय समय पर अपने अन्वेषणों का पुस्तकाकार प्रकाशित किया करते थे। वास्तव में इनको विभिन्न विषयों पर ऐतिहासिक तथ्यों का एक अगाध खजाना ही समझना चाहिए, जो भारत के प्राचीन इतिहास के प्रेमियों के लिये स्थायी महत्व के हैं। इसी बीच में इन्होंने जैन धर्म के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संशोधन और सम्पादन कर डाला, इतना ही नहीं, स्वयं प्राचीन जैन भद्रों का अवलोकन किया। इससे, इन्होंने जैन धर्म के इतिहास में एक नूतन जीवन डाल दिया, क्योंकि इनके

पहले इसका इतिहास एक दम कोरा था। पाण्डुलिपियों के अन्वेषण में इन्होंने वैष्णव और शैव धर्म के विषय में भी बहुत सी नई बातें ज्ञात कीं, जो सन् १९१३ में 'वैष्णव, शैव आदि मतों के सिद्धान्त' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई। यही उनका सब से बड़ा ग्रन्थ है। सन् १८८४ में इन्होंने अपना 'दक्षिण इतिहास' प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ भी ऐतिहासिक तथ्यों का कोष कहा जा सकता है; शायद अभी तक इससे बढ़कर दक्षिण का और कोई इतिहास नहीं निकला।

सन् १८८५ में जर्मनी के गोटिंगेन विश्वविद्यालय ने भाण्डारकर जी की विद्वत्ता का स्तंभार करने के लिए इन्हें पी० एस० डी० की डिग्री से विभूषित किया। दूसरे साल ये पूर्व-तत्त्ववेत्ताओं की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में, जो घायना में हुई थी, सम्मिलित हुए। उसके लिए इन्होंने यज्ञ और पञ्चरात्रविधान के ऊपर एक लेख लिखा था, जिसकी वहाँ बड़ी प्रशंसा हुई। इस सभा में सम्मिलित होने से भाण्डारकर की बड़े बड़े योरोपाय विद्वानों से भेंट हुई। फिर क्या था, योरोप और अमेरिका की पूर्वतत्त्ववेत्ता सभा सोसाइटियाँ भाण्डारकर का सम्मान करने के लिये मानों स्पर्धा करने लगीं। ये इटली के डी० एम० जी०, ए० डी० एस० और ए० एस० सभाओं के सम्मानित सदस्य चुने गये। यह देखकर सरकार से भी न रहा गया, उसने भी सन् १८८७ में इनको सी० आई० ई० की उपाधि दे डाली। दूसरे साल ये सेंट पीटर्सबर्ग के इम्पीरियल एकेडेमी आफ सायन्स के सदस्य

चुने गये। सारांश यह कि ये क्या देश में और क्या विदेश में सर्वत्र सर्वसम्मति से भारतवर्ष के सबसे बड़े संस्कृतज्ञ माने जाने लगे।

हमारी समझ में तो सर भाण्डारकर को सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि इनका साहित्यिक प्रेम आजन्म ज्यों का त्यों बना रहा। नौकरी छोड़ने पर उसमें कोई हास न हुआ। यहाँ तक कि वृद्धावस्था में भी, जब इनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था, ये अदम्य उत्साह के साथ काम करते रहे। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ भी वृद्धावस्था में ही प्रकाशित हुआ है। वास्तव में यह है भी बड़े महत्व का जो तुलनात्मक दृष्टि से धर्मों का अध्ययन करते हैं उन्हें मालूम होगा कि हिन्दू धर्म और प्रारम्भिक ईसाई धर्म के बहुत से सिद्धान्तों में बड़ा सादृश्य पाया जाता है। भक्तिवाद का सिद्धान्त इसका सबसे मोटा उदाहरण है; बहुत से ईसाई पादरियों का कहना भी यही है कि ईसाई धर्म के प्रभाव से ही हिन्दू धर्म में भक्तिवाद का प्रसार हुआ। सर भाण्डारकर ने अपने इस ग्रन्थ में अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे भारतीय साहित्य में भक्तिवाद का उल्लेख ईसा से कम से कम ६ शताब्दी पहले से होता चला आ रहा है। पाणिनी के समय में वामदेव की पूजा होती थी और भागवत धर्म का गूँव प्रचार था, यह बात पाणिनी के सूत्रों से ही स्पष्ट है। इसलिए यह कहना कि ईसाई धर्म के प्रभाव से हिन्दू धर्म में भक्तिवाद का चलन हुआ, सर्वथा मिथ्या है। इस प्रकार सर भाण्डारकर ने वास्तव में

इतिहास की ही नहीं, हिन्दू धर्म की भी बड़ी भारी सेवा की है ?

सन् १९१५ के मध्य में इनके शिष्यों और श्रद्धालुओं के हृदय में यह विचार उठा कि सर भाण्डारकर की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिये एक भारतीय संस्था की आवश्यकता है और उसमें वही प्राचीन शोध सम्बन्धी कार्य होना चाहिये जो इनको इतना अधिक प्यारा है। सर रतन और सर दोराब ताता सचमुच हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, जिनकी सहायता से यह विचार शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत हो गया। जुलाई सन् १९१७ में लार्ड विलिंगडन के हाथों से भाण्डारकर संस्था की विधिवत् स्थापना हो गई। यह दर्प का विषय है। तब से बहुत से उत्साही विद्यार्थी इनके बताये हुए मार्ग के अनुसार शोध सम्बन्धी कार्य में लगे हुए हैं। वास्तव में इन्होंने अपने जीवन काल में ही लोगों में इस विषय की ओर इतना प्रेम और उत्साह जाग्रत कर दिया था कि आशा है, उनका कार्य सदैव सुचारुरूप से चलता रहेगा।

इधर कुछ दिनों से सर भाण्डारकर ने सब काम काज छोड़ दिया था। उनका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ रहा था। ८८ वर्ष की आयु में इनका स्वर्गवास हो गया।

अभ्यास

- १—मनुष्य किन दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं, असाधारण मनुष्य कौन कहलाते हैं ?
- २—सर भाण्डारकर का संक्षिप्त परिचय दो ।
- ३—सर भाण्डारकर का विशेष क्षेत्र क्या था और उनकी विशेषता क्या थी ?

३१—मातृ-भूमि

(१)

हे मातृ-भूमि ! सब सुखागार ।

तुमको प्रणाम है बार बार ॥

सौन्दर्य-कृपा तेरी बिलांक ।

हो जाता हूँ मैं विगतशोक ॥

(२)

जलप्रचुर, देवि ! धन-धान्य-पूर्ण ।

लख तुझे होय रिपु-हिय विचूर्ण ॥

प्राकृतिक दृश्य तेरे निहार ।

देता नन्दन सर्वस्व हार ॥

(३)

सिर अहा ! हिमालय सा विशाल ।

तेरा शोभित कर रहा भला ॥

वस ध्यान मात्र करके त्वदीय ।

होता है पुलकित मन मदीय ॥

(४)

सुर सरिता कर जल की जुहार ।

तब हिय का है हो रही द्वार ॥

अति कुसुमित जिसका रम्य तीर ।

चलती है नित सुरभित समीर ॥

(५)

हैं जहाँ लता तरुवर अनेक ।

है जहाँ नित्य बँटता विवेक ॥

अध्यात्म विषयरत योगनिष्ठ ।

हैं योगीजन रहते सुशिष्ठ ॥

(६)

यह विविध द्विजों का मिष्ट बाल ।

करते कलकल जो कर कलोल ॥

मानों तब अर्चन हेतु आज ।

है प्रकृतिदेवि ! रच रही साज ॥

(७)

काश्मीर और पाञ्चाल देश ।

बंगाल युक्त मध्य प्रदेश ॥

महाराष्ट्र सिंध, गुजरात प्रान्त ।

मरुभूमि और मदरास प्रान्त ॥

(८)

यह सब तेरे अन्तर्गत हैं ।

और विविध गुणालंकृत हैं ॥

तब अन्तर्गत सब ये महान ।

गुण गण भूपनयुत भासमान ॥

हैं अपने ढंग के सब विचित्र ।

इन में रहते नर सच्चरित्र ॥

(९)

थे रहे राम औ कृष्ण, भीम ।

जिनकी थी बलवत्ता असीम ॥

था यहीं उन्हीं का राज्य कुत्र ।

हाते थे यहाँ अनेक सत्र ॥

(१०)

वे भोज और विक्रमादित्य ।

जिनके ये अद्भुत सर्भा कृत्य ॥

वे जयमल पृथ्वीराज धीर ।

जो थे अविचल औ समर-धीर ॥

(११)

वे राजसिंह राणा प्रताप ।

रण में रुकता जिनका न चाप ॥

ये तेरे सुत सब थे समान ।

था भरा जिन्हों में स्वाभिमान ॥

(१२)

पहले तब मेधावी बलिष्ठ ।

श्रे अगणित सुन कर्तव्य-निष्ठ ॥

अब देश भक्ति का है अभाव ।

यह हुआ अविद्या का प्रभाव ॥

(१३)

मनु, बुद्ध, पतञ्जलि वेदव्यास ।

था यहाँ सबों का प्रिय निवास ॥

जिनका धरने से तनिक ध्यान ।

हो जाता है उर शांति महान ॥

(१४)

हे मातृ-भूमि ! तब अन्न-भुक्त ।

हैं तेरे ऋण से सभी युक्त ॥

हम तेरी सेवा करें नित्य ।

तब समझें निज को कृत-स्वकृत्य ॥

—बदरीनाथ भट्ट

अभ्यास

१—मातृभूमि की प्राकृतिक शोभा का कुछ वर्णन करो ।

२—जिन महापुरुषों के नाम इस पाठ में आये हों उनमें से किसी चार के विषय में वर्णन करो ।

३—मातृभूमि के सब लोग ऋणी क्यों हैं ?

४—रम्य, सुरभित, निष्ठ, कलोल और अन्तर्गत का अर्थ लिखो ।

३२—रसायन क्या है ?

लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना, गन्धक, कागज, दावात, लकड़ी, काँच, जल, चूना, कोयला, शोरा, नमक इत्यादि सैकड़ों वस्तुएँ हम लोग प्रतिदिन देखते और उनका प्रयोग करते हैं। ये वस्तुएँ क्या हैं ? हवा, पानी या आग से इनमें क्या परिवर्तन होता है ? भिन्न-भिन्न वस्तुओं को एक दूसरी के संसर्ग में लाने से कोई हेर-फेर होता है या नहीं यदि कोई हेर-फेर होता है, तो क्या होता है ? कभी एक पदार्थ से एक अधिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, और कभी अधिक पदार्थों से एक पदार्थ, इनमें वस्तुतः क्या क्रिया होती है ? इन सब बातों का अध्ययन और अन्वेषण विज्ञान (साइंस) के रसायन-विभाग के अन्तर्गत होता है।

‘ रसायन ’ वस्तुतः आधुनिक विज्ञान है, यद्यपि रासायनिक द्रव्यों और रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन प्राचीन काल से होता चला आता है। सब से पहले मिस्र और भारत में रासायनिक क्रियाओं और द्रव्यों का ज्ञान लोगों का था। आरम्भ में यह अध्ययन केवल दो उद्देश्यों से होते थे। कुछ लोगों का यह धारणा थी कि लोहा या पारा सदृश हीन धातु सोने में परिणत हो सकती है। लोग ऐसा समझते थे कि ‘ पारस-मणि ’ की सहायता से यह कार्य हो सकता है—‘ पारस परसि कुधातु सुहाई ’। इस पारस-मणि की खोज में कितने मनुष्य लगे और मर मिटे—इसका ज्ञान किसी को नहीं है। धीरे-धीरे इस निरर्थक खोज की ओर से लोगों का मन हटा, और ऐसी क्रिया के

आविष्कार में लगे, जो लोहे या पारे को सोना बना दे। ऐसा समझा जाता है कि मिस्र वालों को ऐसी क्रिया मालूम थी जिसके द्वारा वे लोहे या अन्य हीन धातुओं को सोने के समान धातुओं में परिणत कर सकते थे। वस्तुतः ऐसी ही खोज से आधुनिक रसायन की नींव पड़ी और अनेक रसायनिक क्रियाओं का आविष्कार हुआ, जिनके लिये सारा संसार इन प्राचीन पुरुषों का ऋणी है। अंगरेज़ी का 'केमिस्ट्री' शब्द यूनानी 'कीमिया' से बना है। इस 'कीमिया' शब्द का अर्थ 'धातु का परिवर्तन' है। मिस्र वालों से अरब वालों ने इस धातु परिवर्तन कला का ज्ञान प्राप्त किया, और उनसे यह ज्ञान अन्य पाश्चात्य देशों में फैला।

दूसरी चेष्टा मनुष्यमात्र को ऐसी औषधि के आविष्कार की ओर झुकी, जिससे मनुष्य अमरत्व को प्राप्त हो, वा कम से कम बहुत समय तक जीवित रह सके और रोगों के कष्ट से वंचित रहे। इस प्रकार लोहा, सोना, पारा इत्यादि धातुओं के भस्मों का व्यवहार औषधियों में आरम्भ हुआ। लोगों ने देखा कि पारे में अनेक रोगों के दूर करने की शक्ति विद्यमान है। ऐसी औषधियों को वे 'रस' कहने लगे और इसी से 'रस' शब्द का आविर्भाव हुआ। ऐसी औषधियों की खोज में भी अनेक क्रियाओं और यंत्रों का आविष्कार हुआ, इस प्रकार बहुत प्राचीन काल में ही भारत में रसायन की नींव पड़ी। सालहवीं शताब्दी तक 'रसायन' या तो सोना बनाने वा औषधि बनाने के लिये ही अध्ययन की सामग्री थी। इस समय तक वे ही लोग इसका अध्ययन करते

थे जो या तो चिकित्सक थे वा जिन्हें सोना बना कर धनी होने का धुन सवार थी। सत्रहवीं शताब्दी से रसायन का अध्ययन केवल ज्ञानोपार्जन के विचार से आरम्भ हुआ। जब तुला का प्रयोग पहले-पहल विज्ञान के अध्ययन में आरम्भ हुआ और यह मालूम होने लगा कि पदार्थों से परिवर्तन में 'मात्रा' का परिवर्तन होना है वा नहीं, तब वायु के एक मुख्य अवयव 'आक्सिजन' नामक गैस का आविष्कार हुआ, और तब से ही आधुनिक रसायन-विज्ञान की नींव पड़ी। 'आक्सिजन' का यह आविष्कार प्रायः १७७४ ई० में हुआ। आविष्कार का श्रेय एक फ्रांसीसी रसायनज्ञ मि० 'लेभीयोजियर' को प्राप्त है। यद्यपि अंगरेज रसायनज्ञ इनका श्रेय इंग्लैंड के रसायनज्ञ 'प्रीस्टले' को देते हैं और जर्मनी तथा आसपास के रसायनज्ञ इसका श्रेय स्वीजरलैंड के रसायनज्ञ 'शील' को देते हैं। वस्तुतः 'लेभीयोजियर' महाशय ही आधुनिक रसायन के जन्मदाता कहे जाते हैं। इसी कारण अनेक समय तक रसायन 'फ्रांसीसी विज्ञान' के नाम से विख्यात था।

इस समय से अब रसायन का स्वतंत्र रूप से अध्ययन होने लगा और अनेक महत्वपूर्ण बातों का आविष्कार हुआ—अनेक सिद्धान्त और नियम प्रतिपादित हुए। आज-कल हजारों मनुष्य केवल ज्ञानोपार्जन के विचार से रसायन के अध्ययन में लगे हुए हैं। रसायन के अध्ययन से मनुष्यमात्र को कितना लाभ हुआ है, इसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं। मनुष्य को सभ्य बनाने वाली

जितनी बातें हैं, उनमें अधिकांश इस विज्ञान के अध्ययन का ही फल है। नाना प्रकार की ओषधियाँ, अनेक कृत्रिम रंगों, सुगंधित द्रव्यों, विस्फोटक पदार्थों, भिन्न-भिन्न प्रकार की खादों इत्यादि का निर्माण कुछ ऐसे नमूने हैं, जिनसे इस विज्ञान की व्यापकता और महत्व का कुछ-कुछ पता लगता है।

ऐसे महत्वपूर्ण विज्ञान का अध्ययन सब के लिये आवश्यक है। कौन नहीं जानना चाहता कि हम जो भोजन करते हैं, उसमें क्या क्रिया होती है, हमें क्या खाना चाहिये—क्या नहीं; पीतल के बरतन में दही खाना क्यों वर्जित है, दूध के साथ नमक क्यों वर्जित है, दूध से जमकर दही कैसे बनता है।

बालकों ! यदि तुम इन सब प्रतिदिन की होने वाली घटनाओं और विषय का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो, तो यह रसायन के अध्ययन से प्राप्त कर सकते हो।

अभ्यास

- १—रसायन शास्त्र किसे कहते हैं ? उसके अध्ययन की नींव कैसे पड़ी ?
- २—आधुनिक रसायन के जन्मदाता वास्तव में कौन हैं ? उनका संक्षिप्त परिचय दो।
- ३—रसायन शास्त्र का अध्ययन आवश्यक क्यों हैं ?



३३—दिल के फफोले

चौतुके

बनों में जिससे रही बहार,
 बाग का जो था सुन्दर साज ।
 मसल क्यों उसको देते पाँव,
 सजे जिससे हैं सर के ताज ॥ १ ॥
 बनी जिससे अलबेली बेलि,
 फव्वन जिससे पाते थे रूख ।
 धूल में उसको मिलता देख,
 सकेगा कैसे आँसू सूख ॥ २ ॥
 महक से जो लेता था मोह,
 तर हुई जिसको देखे आँख ।
 न लेगा कौन कलेजा थाम,
 देखकर उड़ती उसकी राख ॥ ३ ॥
 चूमता था जिसका कर प्यार,
 भाँवरें भर भर करके भौर ।
 उठे उस पर क्यों उसका हाथ,
 कहाता है जो जग सिर मोर ॥ ४ ॥
 राह में देवें उन्हें न डाल,
 न जी से देवें उन्हें उतार ।

भरती थी जिनसे कितनी गोद,
 बने जो किसी गले का हार ॥ ५ ॥
 किया था जिसका जी से प्यार,
 दिया क्यों उसे बला में डाल ।
 बना किसलिये काल का कौर,
 रहा सो किसी काँख का लाल ॥ ६ ॥
 दिया क्यों उसे धूल पर फेंक,
 बने क्यों उससे बेपरवाह ।
 खिचे थे जिसको रंगत देख,
 कभी था जिसकी चित में चाह ॥ ७ ॥
 न उनकी पंखड़ियाँ लें नाच,
 उन्हें दें गलियों में न बखेर ।
 नहीं जिनके छवि पाते भूल,
 सके हम आँख न जिनसे फेर । ८ ॥
 कम न उनका कर देवें मोल,
 किसलिये उन्हें करें पामाल ।
 मेलियों से करते हैं मेल,
 गले में जिनका गजरा डाल ॥ ९ ॥
 कलेजे जिससे खायें चाट,
 किसी से हा क्यों ऐसी भूल ।
 किस लिये नुचे बने बदरंग,
 हाथ में आया कोई फूल ॥ १० ॥
 —पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ' हरिऔध '

अभ्यास

- १—पूल से यहाँ कवि का क्या तात्पर्य है ? अवही तरह समझाओ ।
- २ - पूल में मिलना, आँखों का तर होना, जी से उतार देना का भावार्थ समझाओ और इनका प्रयोग अपने पनाये वाक्यों में करो ।

३४—औरंगजेब का पत्र—आजमशाह के नाम

प्रिय पुत्र आजम !

न जाने क्यों, कुछ दिनों से चित्त में उचाट-सी लग रही है । तुम्हें मालूम है कि मैं किस मुस्तेदी से साम्राज्य का काम किया करता था, किस कठोरता से राजपुरुषों को काम में लगाये रहता था, और किस चाल से अपने शत्रुओं से रईम उत्पन्न किया करता था । किन्तु देखता हूँ ; कुछ दिनों से यह सारी मुस्तेदी, सारी कठोरता, और सारी चाल मेरा साथ छोड़ रही है । राज्य को बढ़ाने की अभिजापा विधियों को दंडित करने की धुन, और इस्लाम का प्रचार करने की लगन आदि—सारी बातें, न जानें क्यों, व्यर्थ प्रतीत हो रही हैं । विदित होना है, मैं किसी अनिश्चित उद्देश्य की ओर अब तक बराबर जीव्रता से आगे ही बढ़ता गया हूँ । एक क्षण के लिये भी मैंने पीछे की ओर प्तिर कर नहीं देखा था । किन्तु अब मुझे भीतर से यह आवाज सुनाई पड़ रही है कि ठहरो औरंगजेब, जरा पीछे देखो, अब भी तो कुछ सोचो कि तुमने इतनी बड़ी जिन्दगी में क्या किया है !



औरंगजेब

प्यारे आजम, हो सकता है कि बहुत दिनों से तुम्हारा दोम-कुशल नहीं विदित हुआ है ; इसलिये चिन्त घबड़ा रहा है । प्यारे 'वेदर' * का कुशल-समाचार जानने के लिये यह आकुलता बढ़ चली हों, अथवा किसी सम्बन्धी की अज्ञात बाधा से ही ऐसी उद्विग्नता उत्पन्न हुई हो । फिर भी, यह घबराहट इतनी बढ़ रही है कि कोई विशेष कारण तर्क में नहीं आता है । जहाँ तक अनुमान होना है, इसका यथार्थ कारण यह है कि अब मेरी वृद्धावस्था उस सीमा को पहुँच चुकी है, जहाँ से हरेक यात्री को परलोक का धुंधला दृश्य दिखाई देना है । किसी ने इस अवस्था के विषय में कहा ही ठीक कहा है कि—

यम-मेना-सी विमल ध्वजा अब जरा दृष्टि में आती है ।

लड़ती हुई पाप-रागों से रेह हारती जाती है ॥

सचमुच अब मैं बराबर यही सोचा करता हूँ कि मुझे अब यहाँ बहुत कम दिन ठहरना है । पका हुआ आम जिस प्रकार हल्की हवा के झोंके से गिर पड़ता है, उसी प्रकार न मालूम मैं किस दिन किस घड़ी किस क्षण गिर पड़ूँगा । अब मुझे परमात्मा के सामने एक-एक कर अपनी करतूतों का लेखा देना होगा । इतने बड़े साम्राज्य का एक कृत्र सम्राट् होने पर भी—मुझे अकेला ही जाना होगा, अकेला ही हिसाब देना होगा । उस

* 'वेदर वख्त' आजमशाह का पुत्र और औरंगजेब का पौत्र था । औरंगजेब इसे बहुत प्यार करता था ।—लेखक ।

समय मेरा एक भी अनुचर या एक भी भुल्ला-मौलवी मेरा साथ नहीं देगा, और न किसी के कुछ कहने-करने से मेरा कोई अपराध ही कम हो सकता है, वह मेरा पाप दंड से बच सकता है। हाय ! मैं कितना असहाय हो रहा हूँ ! इन बातों की चिन्ता बराबर चित्त को व्यथित कर रही है। यही कारण है कि राज्य के कार्यों में कोई तत्व नहीं देख पड़ता। संसार ही सूना दीखता है। फिर राज-पाट, धन-दौलत आदि की चिन्ता हो तो कैसे ?

आजम ! मेरा परलोक बहुत ही अन्धकारपूर्ण और भयानक दीखता है। यद्यपि इस्लाम हमें यह शिक्षा देता है कि मरने के बाद सभी आत्माएँ साईं-सी पड़ी रहती हैं और अन्त में कयामत के दिन एक बार सब जाग्रत हो उठेंगी—उसी समय सबको अपना-अपना हिसाब देना होगा, तथापि मुझे तो ऐसा ही विदित हो रहा है कि मैं मरा और कयामत आई। एक क्षण के लिये भी मुझे अपने हिसाब को ठीक करने का अवसर नहीं दिया जायगा। उफ ! कैसी आज़त है ! कैसी लाचारी है ! मैं तो दिल से अभी काफिर हो रहा हूँ कि अपने धर्म के विरुद्ध भी बरबस कयामत का दिन मौत के साथ ही देख रहा हूँ। क्या काफिरों का ही यह खयाल नहीं है कि मरने के बाद ही धरेक जीव के गुण-कर्मों का निर्णय होता है ! विदित होता है, ऐसा कुछ चित्त में इसी लिये उठ रहा है कि मैं अपने पापों का बोझ बहुत ही भारी अनुभव कर रहा हूँ। मैं अब भी उन पापों की क्षमा के लिये खुदा और रसूल पर विश्वास नहीं कर सकता हूँ। सच पूछो तो मेरी

सारी जिन्दगी ही अविश्वास में बीता है। मैंने अपनी ज़ाया का भी कभी विश्वास नहीं किया; फिर रसूल और खुदा के ऊपर किस तरह विश्वास करता? जो कुछ था, वह अन्धा दुराग्रह था। मैं जब अपने पाप-कर्मों को ओर दृष्टि फेरता हूँ, तो उन्हें गिनती से बाहर पाना हूँ। यह बान सच है कि पापियों को नरक मिलता है; किन्तु इस प्रकार की अनगिनती में मेरी क्या स्थिति होगी, मुझे कितन परिणामों का भोग करना होगा, यह मैं नहीं जानता। परमात्मा ही जाने, मेरी क्या दशा होगी !

मैंने अपने जीवन में एक ही सबाब (पुण्य) किया है और बाकी सब गुनाह—(पाप) ही—गुनाह नजर आते हैं। वह सबाब है कि मैंने जिन्दगी-भर इस्लाम-धर्म की सेवा की है—इसके प्रचार में अपनी सारी शक्ति लगाई है; यहाँ तक कि इसके लिये मैंने जार-जुलम को भी उठा नहीं रक्खा है। मैंने 'जजिया' लगाकर विधर्मियों को दंडित किया है, मंदिरों को तेंडूकर लुत-परस्ती (मूर्ति-पूजा) को नष्ट किया है, और उनके स्थान पर मसजिदें आदि बनवा कर इस्लाम को स्थापित किया है। लाखों काफिरों को तलवार के जार से इस्लाम कबूल करवाया है और उनसे कराड़ों मुसलमान बच्चे पैदा करवाये हैं। मैंने मुसलमान-प्रजा के लिये अनेक सुविधायें की हैं और फतवा-आलमगीरी लिखकर इस्लाम की व्यवस्था की है। इस प्रकार, जहाँ तक हो सका, मैंने इस्लाम को भरपूर सेवा की है। यदि इन सेवाओं में कोई सबाब होगा, तो अवश्य मैं रसूल का कृपापात्र और ईश्वर का आशीष-भाजन

होऊंगा। यदि नहीं, तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं हो सकता ! तुम पूछोगे कि इस्लाम के प्रति मुझे यह संदेह क्यों हो रहा है, किन्तु यथार्थ में इसका कारण है। इस्लाम के प्रति मेरी वही श्रद्धा और भक्ति है, जिसके बल पर मैंने दूसरे-दूसरे बादशाहों के समान भोग-विलास में अपने को नहीं खाया है, जिसके बल पर मैंने आज तक शराब छुआ तक नहीं, और जिसके कारण मैंने शाही खजाने के रुपये को अपना नहीं समझा। किन्तु, यह सब होने पर भी, मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने इस्लाम को ठीक से नहीं समझा। मैं इसकी बाहरी आज्ञाओं में ही व्यस्त रहा—इसके वास्तविक तत्व को मैंने नहीं जाना; मैंने अपने को नहीं पहचाना।

प्रिय पुत्र ! इस्लाम के अंदर भी ऊँचे दार्शनिक विचार हैं, उन्हें हमारे सूफियों ने उसी प्रकार विलग किये हैं, जैसे किसान भूसे से चावल को अलग करते हैं, और इन ऊँचे विचारों के सामने वे बाहिरी आज्ञायें गौण हो जाती हैं। मैं इतने बड़े साम्राज्य का अधिपति था—मेरे हाथों में कई करोड़ प्रजा का जीवन-मरण था—कितने राष्ट्रों की भलाई-बुराई थी, किन्तु इन सब कर्तव्यों का निर्वाह मुझ से कुछ भी न बन पड़ा। मैंने अपना सारा समय प्रजा-पीड़न, कोष-संग्रह, राज्य-वृद्धि, अत्याचार, द्वेष, शत्रुता, पक्षपात और न्याय में बिताया है। एक भी राष्ट्रधर्म या राजधर्म का पालन नहीं किया। मैंने किसी हितैषी का हितोपदेश नहीं सुना। मैंने किसी उपकारी का प्रत्युपकार नहीं किया। मैंने किसी को सेवा का पुरस्कार नहीं दिया, और न मैंने किसी योग्य पुरुष

का उचित सम्मान ही किया। कहाँ तक लिखूँ, मैंने अपने निकट से-निकट सम्बन्धियों के प्रति भी कोई अच्छा वर्त्ताव न किया। मेरा जीवन पाप, हत्या, लोभ, और धोखाधड़ी से भरा हुआ है। प्रजा की शिक्षा, उन्नति और सहाई—जिसके लिये परमेश्वर राजा को राज्य देता है—मुझसे कासों दूर रही है। मैंने महाराणा राजसिंह की सम्मति का निरादर किया, शिवाजी को अपमानित किया, जयसिंह को सरवा डाला, और सारी प्रजा को पीड़ित किया। इस प्रकार, मैंने चारों ओर अपने शत्रु-ही शत्रु खड़े किये हैं मित्र एक भी नजर नहीं आता। जिन मुस्लिमों और मौलवियों ने मुझे बराबर धोखे में रखा, वे भी मुझसे आज सन्तुष्ट नहीं हैं। इस-लिये अब मुगल-राज्य का भी भविष्य बहुत ही अन्धकार पूर्ण दृष्टिगोचर हो रहा है। इस समय मुझे अपने पिता शाहशाह शाहजहाँ के एक पत्र की याद आती है, जिसको उन्होंने आगरे के किले से अंतिम बार भेजा था। हाय ! मैं कितना पापी हूँ कि मैंने अपने सिंहासन को सहोदर भाइयों के रक्त से रंजित करके पिता के आँखों से धोना चाहा था। ऐसे पाप का परिणाम यह होना उचित ही था कि धुलने के बदले वह निरीह प्रजा की लांछों से और भी ढँक जाय।

आजम ! मैंने ऐसी ही कलुषित शाही गद्दी पर ५१ वर्ष पर्यन्त राज्य किया है। ठीक इतने ही वर्षों के राज्य में हमारे प्रपितामह (परदादा) 'बादशाह अकबर' ने इस साम्राज्य को इतना सुदृढ़, विशाल और शक्तिशाली बनाया था ; किन्तु मैंने उसे क्षिन्न

भिन्न और निर्वल बना दिया है। यद्यपि इसका विस्तार उस समय से कुछ अधिक ही है, तथापि मुझे विदित होता है कि मेरे मरने के बाद ही यह विशाल इमारत जादूगर की बेड़ियों की भाँति एक साधारण भटके से बिखर जायगी। तुम लोगों का कोई प्रयत्न इसका सँभाल न सकेगा। औरंगजेब ने प्रजा की जैसी भलाई की है, उसका प्रजा क्यों भूलने लगी। वह भूखी सिंहनी की भाँति टूट पड़ेगी, और सारा देश जीव ही विद्रोह और अशान्ति से भर जायगा। अब सचमुच मुगल-राज्य की खैर नहीं है। मेरे नाम पर केवल तुम्हीं नहीं—केवल वंदरघरन ही नहीं—घरन तुम्हारी और उसकी आने वाली संतान भी—रायेगी तथा मुझे गाली देगी कि मैं सब का उत्तराधिकार से घञित कर रहा हूँ।

किन्तु मुझे क्या कहते हो ! अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। रोना-धोना व्यर्थ है। खुदा के सामने जो मेरी दुर्गति शेष है, वह तो पाऊँगा ही; किन्तु तुम्हें इतना कहे जाता हूँ कि तुम्हें यदि मुगल-राज्य की रक्षा करनी हो, तो मराठों से होशियार रहना, राजपूतों से मिले रहना, और प्रजा में पक्षपात न करना। मैं जिन्दगी-भर इस्लाम का अध्ययन करके इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि जबरदस्ती करने से कोई सवाब नहीं मिलता, बल्कि राजा को इसमें पाप ही होता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में सब प्रजा बराबर है। मुझे भय है कि इतना करने पर भी तुम्हारा कोई विश्वास नहीं करेगा; क्योंकि मैंने निर्दयता-पूर्वक सबके साथ विश्वासघात किया है। अब अधिक लिखना व्यर्थ है। परमात्मा

तुम्हारी रक्षा करे। वही तुम्हें इस विशाल राज्य के सँभालने का बल दे। अब आओ, देर न करो। यों तो कुशल ज़ेम पाने के लिये चित्त चिन्तित है ही, तिस पर से झावनी में कई प्रकार के भाषों का संचार हो रहा है—सर्वत्र भय, शंका और अविश्वास ही सुन पड़ता है। मुझे भी पूरा भय है कि राजपूत लोग शीघ्र ही स्वतंत्रता की घोषणा करेंगे—मराठे लूट-पाट मचायेंगे—फिरंगी लोग भी, जो इस देश में कुछ दिनों से व्यापार करने के लिये आये हैं, कुछ-न कुछ करेंगीगे। बस, मैं अकेला आया था, और अकेला ही जाना चाहता हूँ। राज्य, कोष, सेना, किला आदि का कुल भार तुम्हारे ऊपर अर्पण करना ही शेष है। इसलिये विलम्ब न करो।

तुम्हारा—भयभीत पिता
औरंगजेब

अभ्यास

- १—औरंगजेब को किन किन बातों का भय प्रतीत हो रहा था ?
- २—औरंगजेब को अपने ईश्वर के समझ जाते हुए डर क्यों लग रहा था ?
- ३—इस्लाम का अध्ययन करने से औरंगजेब किस सिद्धान्त पर पहुँचा था।
- ४—औरंगजेब के इस पत्र से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

३५—यशोदा जी का पुत्र-प्रेम

अहह दिवस ऐसा हाय ! क्यों आज आया ।

निज प्रिय सुन से जो मैं जुदा हो रही हूँ ।

अगणित गुण वाली प्राण से नाथ प्यारी ।

यह अनुपम थाली मैं तुम्हें सौंपती हूँ ॥ १ ॥

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही ।

नहिँ कुँवर कहीं भी आज लौ हैं सिधारे ।

मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना ।

कुछ दुख पथ मेरे बालकों को न हावे ॥ २ ॥

खर पवन सतावे लाड़िलों को न मेरे ।

दिनकर किरणों की ताप से भी बचाना ।

यदि उचित जँचे तो क्राँह में भी बिठाना ।

मुख सरसिज ऐसा म्लान होने न पावे ॥ ३ ॥

विमल जल मँगाना देख प्यासा पिलाना ।

कुछ लुधित हुए ही व्यंजनों को खिलाना ।

दिन बदन सुतों का देखते ही बिताना ।

प्रफुलित अधरों को सूखने भी न देना ॥ ४ ॥

यह तुरंग सजीले वायु से वेग वाले ।

आति अधिक न दौड़ें यान धीरे चलाना ।

वह हिल कर हाहा कष्ट कोई न देवे ।

परम मृदुल मेरे बालकों का कलेजा ॥ ५ ॥

नगर विविध ऐसी वाम भो हैं दिखाती ।

सब नहिं जिनकी हैं वामता वृक्ष पाते ।
सकल समय ऐसी साँपियों से बचाना ।

वह निकट हमारे लाड़िलों के न आवें ॥ ६ ॥
जब नगर दिखाने के लिये नाथ जाना ।

निज सखल कुमारों को खलों से बचाना ।
सँग ही सँग रखना साथ ही गेह लाना ।

उन सुअन दूगों से दूर होने न पावें ॥ ७ ॥
धनुख मख सभा में देख मेरे सुतों को ।

तनक भृकुटी टेढ़ी नाथ जो कंस की हो ।
अवसर लख ऐसे यत्न तो मोच लेना ।

न कुपित नृप हाँवें औ बचें लाल मेरे ॥ ८ ॥
यदि बिधि वश सोचा भूप ने और ही हो ।

यह धिनय बड़ी ही दीनता से सुनाना ।
हम बस न सकेंगे जो हुई दृष्टि मैली ।

युग सुअन यही हैं जीवनाधार मेरे ॥ ९ ॥
लख कर मुख सूखा सूखता है कलेजा ।

हृदय दहकता है आग देखे दुखों के ।
प्रिय पति सुत के जो आपदा शीश आई ।

यह अघनि फटेगी औ समा जाऊँगी मैं ॥ १० ॥
जग कर कितनी ही रात मैंने बिताई ।

यदि तनक कुमारों को हुई बैकली थी ।

यह हृदय हमारा भग्न कैसे न होगा ।

यदि कुछ दुख होगा बालकों को हमारे ॥ ११ ॥

बहु निशि नहिं मैंने शीत को शीत जाना ।

थर थर कँपती थी औ लिये अंक में थी ।

यदि सुखित न यों भी देखती लाल को थी ।

सब रजनि खड़े और घूमते थी बिताती ॥ १२ ॥

निज सुख अपने में ध्यान में भी न लाई ।

प्रिय सुत सुख ही से मैंने न देखा ।

अहह ! दुखित कैसे लाड़िले को लगूँगी ।

मुख तक कुम्हलाया नाथ मैंने न देखा ॥ १३ ॥

यह समझ रही हूँ और हूँ जानती ही ।

हृदय धन तुम्हारा भी यही लाड़िला है ।

पर बिवस भई हूँ जी नहीं मानता है ।

यह विनय इसी से नाथ मैंने सुनाई ॥ १४ ॥

अब अधिक नहीं मैं भाखना चाहती हूँ ।

अनुचित मुझसे है नाथ होता बड़ा ही ।

निज युग कर जोड़े इस से हूँ मनाती ।

सकुशल गृह लौट नाथ ले लाड़िलों को ॥ १५ ॥

अभ्यास

१—३, ४, ५ छन्दों के अर्थ लिखो ।

२—इस कविता में माता के प्रेम की जो झाय़ा तुमको दिखलाई देती है, उसको अपनी भाषा में लिखो ।

३—इनके अर्थ लिखो तथा इनको वाक्यों में प्रयोग करो—

मृदुल, सरल, वामता, शीत, अवनि, थाती ।

३६—कृषि

पाठको ! यह तो तुम जानते ही हो कि भारतवर्ष में अधिकतर लोग गाँवों में रहते हैं और उनमें से बहुतों के लिये खेती का ही धन्धा मुख्य है । वे या तो खेती करते हैं, या खेती करने वालों के काम में किसी न किसी प्रकार की सहायता करते हैं । हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि कुल मिला कर तेईस करोड़ अर्थात् सौ पीछे तिहत्तर आदिमियों की आजीविका खेती से ही चलती है । सरकार का भी खेती से बहुत लाभ है । सेना, पुलिस, अदालतें, जेल और स्कूल आदि के लिये बहुत खर्च की ज़रूरत होती है । उन विभागों से आमदनी बहुत कम होती है । परन्तु खेती से तो खर्च काट कर भी सरकार का बड़ी बचत होती है और इस बचत से सरकार के अन्य विभागों का काम चलता है । वास्तव में प्रत्येक प्रान्त की सरकार के लिये आमदनी की सब से बड़ी मद खेती की मालगुजारी है । इस लिए प्रजा तथा सरकार दोनों की दृष्टि से खेती की उन्नति बहुत आवश्यक तथा लाभकारी है ।

भारतवर्ष में कृषि की अवनति के कारण अधिकतर खेती की दशा अच्छी नहीं है । भारतवर्ष की जन-संख्या तथा

क्षेत्रफल को देखते हुए, यहाँ की पैदावार बहुत कम है। यहाँ अन्य देशों की तुलना में, फ़ी आदमी अथवा फ़ी एकड़ भूमि की उपज में बड़ी कमी है।

इसके मुख्य कारण किसानों की दृष्टिता तथा अज्ञान है। उनके पास प्रायः इतनी पूँजी नहीं होती कि वे नये यंत्र, बढ़िया खाद, उत्तम बीज आदि ख़रीद कर काम में ला सकें। अथवा खेतों में पानी देने के लिए कूप आदि जितने चाहिए, खुदवा सकें। भारतवर्ष में खेती पशुओं की सहायता से होती है। अन्य देशों की तरह यहाँ मशीनों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग नहीं किया जाता। इस लिये यहाँ पशुओं की रक्षा, उन्नति और चिकित्सा आदि की विशेष आवश्यकता है, इन बातों का यथेष्ट प्रबन्ध न होने से भी यहाँ खेती अवनत अवस्था में है।

इसके अलावा भारतवर्ष के अधिकतर लोगों में यह रिवाज है कि किसी आदमी के मरने पर, अन्य सम्पत्ति के साथ उसकी भूमि भी उसके बाल बच्चों में बँट जाती है। इसका फल यह हुआ कि अनेक आदमियों के हिस्से में ज़मीन का छोटा छोटा टुकड़ा रह गया, अनेक स्थानों में तो ऐसा भी हो गया है कि एक आदमी की थोड़ी सी ज़मीन यहाँ है और थोड़ी सी बहुत दूर जाकर है। इससे उनमें खेती करना तथा उनकी देख रेख करना बहुत कठिन हो जाता है, और खर्च भी अधिक पड़ता है।

किसानों तथा ज़मींदारों को चाहिए कि सरकार की सहायता से कृषि-सम्बन्धी उपर्युक्त असुविधाओं को दूर करने का यत्न करें, सरकारी कृषि-विभाग से लाभ उठावें तथा उसकी कार्य-पद्धति को अपने लिये अधिक से अधिक उपयोगी बनावें ।

कृषि विभाग—कृषि की उन्नति के लिए भारतवर्ष में एक सरकारी कृषि विभाग स्थापित है। उसका प्रधान अधिकारी इन्स्पेक्टर जनरल कहलाता है। अलग अलग प्रान्तों में खेती का डायरेक्टर तथा उसके नीचे डिप्टी डायरेक्टर, एसिस्टेंट डायरेक्टर, इंजिनियर आदि रहते हैं।

इस विभाग के अफसरों के प्रयत्नों से कृषि के सम्बन्ध में विशेषतया भिन्न भिन्न प्रकार की ज़मीनों में उचित खादों के उपयोग ; अच्छे बीज, पौदों के रोग और उनके निवारण, नयी तरह के औज़ारों के उपयोग और नये तरीकों से खेती करने के सम्बन्ध में—कई उत्तम बातों का ज्ञान प्राप्त हो चुका है। हाँ, सर्वसाधारण में अभी तक इस ज्ञान का यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ, कारण उन्हें अंग्रेज़ी तो क्या देशी भाषा भी तो पढ़नी नहीं आती, उनमें शिक्षा का प्रचार बहुत कम है, और जब तक कि सरकारी कर्मचारी उन्हें इस विषय को भली भाँति समझाने तथा उनकी शंकाओं को निवारण करने का विशेष रूप से उद्योग न करें, सरकारी फ़ार्मों या नुमायशों से किसानों को काफी लाभ नहीं होता ।

किसानों की आर्थिक सहायता—कृषि सम्बन्धी बहुत से

सुधार ऐसे हैं, जिनकी उपयोगिता किसानों की समझ में अच्छी तरह आजाने पर भी, वे उनसे समुचित लाभ इसलिए नहीं उठा सकते कि वे प्रायः बहुत गरीब और ऋण-ग्रस्त हैं। किसानों को सहकारों से बहुत अधिक सूद पर रुपया उधार मिलता है। सरकार उन्हें भूमि की उन्नति करने, पशु, बीज तथा कृषि सम्बन्धी अन्य वस्तुओं का खरीदने के लिए कम सूद पर रुपया उधार देती है इसे 'तकाबी' कहते हैं। किसानों की बड़ी संख्या तथा उनकी अनेक आवश्यकताओं के लिए उन्हें बहुधा काफ़ी "तकाबी" नहीं मिल सकती। सहकारी समितियों से उन्हें बहुत लाभ पहुँच सकता है।

कृषि शिक्षा—कृषि शिक्षा के लिए कुछ स्थानों में कृषि कालिज खुले हुए हैं। पूसा (बिहार) में एक बड़ा कृषि-कालिज है, उसके साथ-कृषि-विज्ञान-शाला, तथा पशु-शाला है। वहाँ अनुभव के लिये खेती की जाती है, जिससे खेती के सम्बन्ध में नयी नयी खोज हो, खेती के रोगों को दूर करने के उपाय काम में लाये जायँ। इसके अतिरिक्त, पूना, सेदापट (मद्रास), कानपुर, नागपुर, शिवपुर (बङ्गाल), लायलपुर (पंजाब), आदि स्थानों में कृषि-कालिज हैं। इनमें कृषि सम्बन्धी उच्च शिक्षा दी जाती है। परन्तु उनमें शिक्षा अँगरेज़ी भाषा द्वारा दी जाती है, यदि देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा दी जाय तो उनसे अधिक लाभ हो सकता है।

भारतवर्ष में जहाँ तहाँ कुछ कृषि विद्यालय भी हैं। इनमें

साधारण शिक्षा के अतिरिक्त कृषि के सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती है, तथा इस विषय का व्यावहारिक अनुभव भी कराया जाता है। कृषि के लिए विशेष प्रकार के ऐसे स्कूलों की बड़ी आवश्यकता है, जो किसानों के लड़कों की सुविधाओं का यथेष्ट ध्यान रखें। इनकी शिक्षा निशुल्क हो और इनकी परिपाटी इस तरह की हो कि इनकी शिक्षा पाने वाले कृषि को घटिया दर्जे का काम समझ कर इसे काँड़ने का विचार न करने लगें, वरन् इसे और भी अधिक उत्साह से तथा कुशलता-पूर्वक कर सकें। इन स्कूलों में हिसाब और विज्ञान आदि की शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिये जो किसानों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हो।

अभ्यास

- १—भारतवर्ष में किन किन स्थानों में कृषि-कालिज हैं ?
- २—भारतवर्ष में कृषि की अवनति के कौन कौन कारण हैं ?
- ३—सरकार किसानों की सहायता किस प्रकार करती है ? उसका नाम क्या है ?
- ४—शब्दार्थ लिखो—

सहकारी, तुलना, निवारण, वैज्ञानिक, आर्थिक, निशुल्क।

३७—वनाष्टक

(१)

प्रेम की मूल सलौनी लता,

बिलसैं द्रुम अंगन सेां लिपटीं ।

नव पल्लव संग प्रसून खिले,

रचैं रंग बिरंगित चित्रपटी ॥

बिटपावली बेलें बनावें घितान,
 अनेकन एक सों एक सटी ।
 बन भूमि की ऐसी ढूँढीली छटा,
 अलि के उर अन्तर आनि अटी ॥

(२)

चारु हिमाचल आँचल में,
 एक साल विसालन कौ बन है ।
 मृदु ममर सील भरें जल स्रोत हैं,
 पर्वत आट है, निर्जन है ।
 लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन,
 प्रवीन विहंगम कौ गन है ॥
 भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरें,
 मदवावरौ सौ अलि कौ मन है ॥

(३)

कोइल तू कल बालनी रो !
 शुक्र प्यारे हरे पट धारे अहो ।
 भोरी मैना सुनेना रसीलेन की,
 सो परेशा परेई के प्यारे अहो ॥
 अहो मोरा मचावन शोरा, चकोरा,
 पपीहा पिया रटवारे अहो ।
 बन के तुम बाँके सदा के धनी,
 बन जीवन प्रान तिहारे अहो ॥

(४)

भिल्ली करें भनकार कहैं.

फुसकारत साँपिन रोस भरी ।

पट घुग्घू डरावने बोलत बोल,

बिलापै बिलार घरी पै घरी ॥

कहुँ हूकत स्यार है, भूकत ल्यार,

लराई लरें लहि लास भरी ;

नीसि भीसन भावने या मन की,

बनवास की वासना नास करी ॥

(५)

विन्ध्य के वन्य विभाग में एक;

सरोवर स्वच्छ सुहावना है ।

कमलों से भरा, भ्रमरों से घिरा,

बिट्ठों से सजा, मन भावना है ॥

कलहंस स्वतन्त्र कलोल करें,

खग वृन्द का बाल लुभावना है ।

बहै मन्द समीर पराग लिये,

अनुराग दिये हुलसावना है ॥

(६)

जेठ को दारुन आतप से,

तप के जगतीतल जावै जला ।

नभ मण्डल काया मरुस्थल सा,

दल बाँध के अन्धड़ आवै चला ॥

जलहीन जलाशय, व्याकुल हैं,
 पशु पक्षी, प्रचण्ड है भानुकला ॥
 किसी कानन कुंज के धाम में,
 प्यारे, करें विसराम चलौ तौ भला ॥

(७)

काली घटा का घमण्ड घटा,
 नभ मण्डल तारकावृन्द खिले ।
 उजियाली निशा, ऋषिशाली दिशा,
 अति सांझें धरातल फूले फले ॥
 निखरे सुथरे बग पन्थ खुले,
 तरु पल्लव चन्द्रकला से धुले ।
 बन सारदी चन्द्रिका-चादर ओढ़े,
 लसैं समलंकृत कैसे भले !

(८)

भारत में वन ! पावन तू ही,
 तपस्वियों का तप-आश्रम था ।
 जग-तन्व की खांज में लग्न जहाँ,
 ऋषियों ने अभ्यस किया श्रम था ॥
 जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था,
 सात्विक जीवन का क्रम था ।
 महिमा वनवास की थी तब और,
 प्रभाव पवित्र अनूपम था ॥

पं श्रीधर पाठक

३८—रानाप्रताप के यहाँ मानसिंह का आतिथ्य

प्रथम गर्भाङ्क

(स्थान उदयपुर—महाराज मानसिंह का आतिथ्य—एक सुसज्जित कमरा—महाराज मानसिंह और कुँवर अमरसिंह बैठे हैं । भामाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं ।

(नेपथ्य में गान)

क्यों तू भगि गुमान इतरात ।

इत उत चमकि फूलि निज छबि पै रे खद्यांत इठलात ॥

है दिन चारि साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात ।

तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात ॥

भानु उदय कहुँ देखि न परि है कोउ न पूछि है बात ।

रविकुल रवि प्रताप के आगे रिपुकुल मानत मात ॥

मानसिंह—(स्वगत) यहाँ के ढंग कुछ विलक्षण दिग्वार्द देते

हैं । यह सब बौद्धार हमहीं पर है । अच्छा देखें यह अभि-

मान कब तक ठहरता है । (प्रकाश) आज हम पर राना

जो ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान

किये हैं ; परन्तु अब तक आप क्यों नहीं पधारे ?

मन्त्री—(हाथ जोड़ कर) हुकुम अन्नदाता जी आज श्री हुजूर

का शरीर अच्छा नहीं है, कुँवर जी, तो पधारे ही हैं ।

उनमें और इनमें भेद क्या है, देखिये शास्त्रों ने भी कहा

है “ आत्मा वै जायते पुत्रः । ”

मानसिंह—हाँ आप का कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालिग्राम की बटिया क्या क्वांटी क्या बड़ी, हमारे तो यह सिरताज ही है, परन्तु जब तक श्री एकलिंग जी की कृपा से राना जी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही में गिनी जायेगी, और आप न पधार कर लड़कों को भेजना अपने घर में आये हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राना जी सेविनती कीजिये, हमारी जो भूलचूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह में ग्रास न देंगे।

मन्त्री—नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चाहिये। यह बात नहीं है। श्री जी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह—(दर्प के साथ मूढ़ों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राना जी ने अपने घर आये हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं (चावल के दाने पगड़ी पर रख कर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्दी फिर आवेंगे और तब दिखावेंगे कि मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है।

(चलने का उद्यत होते हैं)



राणा प्रताप

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं)

प्रतापसिंह—सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बढ़ाई ।
जीवन भय जिन खोय दई आपनी बढ़ाई ॥
जिन जग सुख हित करी जाति की जगन हँसाई ।
लखि जिनको मुख बीर सबै सिर रहे नवाई ॥
तिनके संग खाना कहा मुख देखत हू पाप है ।
जाइ सीस वरु धर्म हिन यह सिसोदिया थाप है ॥

अच्छा अब आप सुख से पधारिये और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथि सेवा रणक्षेत्र में स्वीकार कीजिए यही प्रार्थना है ।

(मानसिंह क्रोध के साथ राजा की ओर देखते जाते हैं)

प्रतापसिंह—मंत्री—

यह पवित्र थल जेहि न विधर्मी छाया दरस्यो ।
ताहि आज या कुल कलंक नै पायन परस्यो ॥
तातें याहि धुवाई शुद्ध गंगोदक छिरकौ ।
नाना विधि दै धूप वायु के मलकों हिरकौ ॥
हमहुँ सवत्सागाय दान विप्रन को दैहीं ।
मुख देखन को पाप प्रायकृत निज कर लैहीं ॥
अहो वीरगण निर्भय रहो सचेत सदाई ।
निज पवित्र पुरुषारथ को फल देहु चखाई ॥
रहै धर्म तौ प्रान नहीं जौ धर्म प्रान नहिं ।

कोउ न कहै नहिं रहे घोर कुत्रो भारत महि ॥
 बहु देसनि करि विजय व्याह अधमन की घाला ।
 अकबर को मन बहकि रह्यो धनमद एहि काला ॥
 गर्व खर्व करि थापि आपुनी हाँक तासु जिय ।
 अहो बहादुर चूको जिन अवसर न हाथ दिय ॥
 जहँ साहस जहँ धर्म जहाँ साँचे सब संगी ।
 तहीं जय निहचय तासों सब होहु इकंगी ॥

सब—महाराज ऐसा ही होगा ।

द्वितीय गर्भाङ्क

(स्थान उदय पुर—राणा चिन्तित भाव से बैठे हैं और पुरोहित सामने बैठे हैं)

प्रताप—पुरोहित जी ! कल का वृत्तान्त तो आपने सुना ही होगा
 अब बहुत शीघ्र मेवाड़ में समराग्नि भभकना चाहती है ।

पुरोहित—हुकुम अन्नदाता जी, मैंने सब सुना है मुझे तब से बड़ी
 चिन्ता है ।

प्रताप—चिन्ता किस बात की है, क्या आप प्रतापसिंह को निरा
 असमर्थ समझते हैं ?

पुरोहित—नहीं अन्नदाता जी, मैं ऐसा कभी नहीं समझता, परन्तु
 मुझे इस लड़ाई में देश की महान दुर्दशा दिखाई पड़ती है,
 इससे मैं निवेदन करता हूँ कि अब भारतवर्ष में मुसलमानों
 की जड़ ऐसी जम गई है कि इसे निर्मूल करना कठिन ही

नहीं वरञ्च असम्भव है फिर व्यर्थ बैठे बैठायें देश को उजाड़ करने से क्या लाभ ? अब हमारा उनका चोली-दामन का साथ है, अब तो ऐसे उपाय करने चाहिये जिससे आपस में भ्रातृ-भाव बढ़े ।

प्रताप—पुरोहित जी ! आप का कहना ठीक है; पर आपने इसका पूरा धृत्तान्त नहीं सुना है इसी से ऐसा कहते हैं नहीं तो कदापि ऐसा न कहते । प्रतापसिंह क्षत्रिय संतान है—क्षत्रियों का यह काम नहीं है कि व्यर्थ परमेश्वर की सृष्टि का नाश करें और उसके आगे अपराधी बनें, दूसरे हम लोग हिन्दू हैं, हम लोगों का धर्म अत्यन्त उदार भावपूर्ण है, प्राणिमात्र की रक्षा करना हमारा धर्म है, फिर यह क्यों कर सम्भव है कि हम ईर्ष्यावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्यों वे लोग उसी जगत् पिता के संतान नहीं हैं ? परन्तु महाराज, हमारे क्रोध का कारण इसरा हो है । हमारा यह कर्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करें । जब कोई हमें छेड़ेगा हम कभी चुप नहीं रह सकते । देखिये हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ़ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पण किया जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़ कर पुत्र रत्न को गवाँ कर भी नष्ट नहीं होने दिया, उसी चित्तौरगढ़ पर—उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसलमानी झंडा फहराय और हम उसे सा० सो० द्वि०—१२

सुख से देखें ! हमारे आर्य भाइयों को मुसलमान बनावें और हम आख बन्द कर लें ?

पुरोहित—धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं; परन्तु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं ? पृथ्वीनाथ, देखें श्रीमद्भागवत ही में आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गौरांगों का राज्य हांगा फिर जब भारत के भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बंटे बंटाये अपने ऊपर भगड़े खड़े करने से क्या लाभ ?

प्रताप—पुरोहित जी ! यह आप क्या कहते हैं ? क्या यह समझ कर कि कल तो हमको मरना ही है आज से ही खाना पीना छोड़ देना उचित है ? आप निश्चय रखिये अब जो आवेंगे इनसे अच्छे ही आवेंगे। एक योरुप का विद्वान अकबर के द्वार में है। अनुमान होता है गौरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशंसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का हागा जिस दिन इन सभी के हाथ से यह राज्य निकल जायेगा, परन्तु क्या यह सब सोच विचार कर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिए ? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसकी प्रार्थना अनुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय ?

पुरोहित—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है ?

उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है ? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिये ।

प्रतापसिंह—गुरुदेव !

जेहि मुखतें ये वैन भरे अभिमान निकारे ।

सिसोदिया कुल करन कलंकित वचन उचारे ॥

करि वंश क्षत्रिय कुल कलंक द्वै चार विचारे ।

बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आज सब शंक निचारे ॥

जबलौं तिनको मसलि नहिं तुव पद गेंद बनाइहों ।

तबलौं हे गुरुदेव नहिं सुखसों दिषस बिताइहों ॥

पुरोहित—अन्नदाता जी, आप सब कुछ कर सकते हैं । श्रीएकलिंग

जी आप पर प्रसन्न हैं । हमारी इच्छा है कि हम लोग सब

से पहिले एकलिंग जी की सेवा में यह सब निवेदन करके

इस उपलक्ष में आज पूजन करें ।

प्रताप—अवश्य चलिये ।

(दोनों का प्रस्थान)

अभ्यास

१ —“ क्यों तू गुमान इतरात ” इस सम्पूर्ण गीत का भावार्थ समझाओ इस स्थान पर यह गीत क्यों गाया गया इस पर भी पूर्ण प्रकाश डालो ।

२ —“ शालिग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी ” इसका भावार्थ समझाओ ।

३ — इस पाठ में प्रताप के आदर्श की क्या विशेष बात दिखाई देती है ?

३६—परशुराम-लक्ष्मण संवाद

तेहि अवसर सुनि सिध-धनु-भंगा ।
 आये भृगु-कुल-कमल-पतंगा ॥
 देखि महीप सकल सकुचाने ।
 बाज-भपट जनु लवा लुकाने ॥
 गौर सरीर भूति भलि भ्राजा ।
 भाल बिसाल त्रिपुंड विराजा ॥
 सीस जटा समि-वदन सुहावा ।
 रिसि-बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
 भृकुटी-कुटिल नयन रिसि गते ।
 सहजहुं चितघत मनहुं रिसाते ॥
 वृषभकंध उर बाहु बिसाला ।
 चारु जनेउ माल मृग-छाला ॥
 कटि मुनि-वसन तून दुइ बांधे ।
 धनु सर कर कुठार कल कांधे ॥

दा०—संत-वेप करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप ।

धरि मुनि-तनु जनु बार-रस, आयउ जहं सब भूप ॥

देखत भृगु-गत-वेपु कराला ।
 उठे सकल भय विकल भुआला ॥
 पितु-समेत कहि निज निज नामा ।
 लगे करन सब दंड-प्रनामा ॥

जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी ।
 मो जानइ जनु आयु खुटानी ॥
 जनक बहोरि आई सिरु नाचा ।
 सीय बोलाइ प्रनाम करावा ॥
 आसिप दीन्ह मखी हरपानी ।
 निज समाज लेइ गई सयानी ॥
 विस्वामित्र मिले पुनि आई ।
 बद-सरोज मेले दाउ भाई ॥
 राम लषन दसरथ के ढोटा ।
 देख असीस दीन्ह भल जोटा ॥
 रामहिं चितइ रहे भरि लाचन ।
 रूप अपार मार-मद-मोचन ॥

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर ।

पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप सरीर ॥

समाचार कहि जनक सुनाये ।
 जेहि कारन महीप सब आये ॥
 सुनत बचन तब अनत निहारे ।
 देखे चाप-खंड महि डारे ॥
 अति रिस बोले बचन कठोरा ।
 कहु जइ जनक धनुष केइ तोरा ॥
 बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू ।
 उलटुं महि जहँ लगि तव राजू ॥

अति डर उतर देत नृप नार्हीं ।
 कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
 सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी ।
 सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
 मन पङ्क्तिताति सीय-महतारी ।
 विधि बनाइ सब बात बिगारी ॥
 भृगुपति कर सुभाव मुनि सीता ।
 अरध-निमेष कलप-सम बीता ॥

दो०—सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर ।

हृदय न हरष विषाद कछु, बोलै श्रीरघुवीर ॥

नाथ संभु-धनु-भंजनि-द्वारा ।

होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥

आयसु काह कहिअ किन मोही ।

सुनि रिसाइ बोलै मुनि कोही ॥

सेवक सो जो करइ सेवकाई ।

अरि-करनी करि करिअ तराई ॥

सुनहु राम जेइ सिव-धनु तोरा ।

सहस-बाहु-सम सो रिपु मोरा ॥

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा ।

ननु मारे जइहैं सब राजा ॥

सुनि मुनिबचन लपन मुसुकाने ।

बोलै परसुधरहिं अपमाने ॥

बहु धनुर्हीं तारी लरिकाई ।
 कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाई ॥
 एहि धनु पर ममता केहि हेतू ।
 सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल-केतू ॥

दा०—रे नृप बालक कालवस, बालत तोहि न संभार ।

धनुर्हीं सम त्रिपुरारि-धनु, विदित सकल संसार ॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना ।
 सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
 का कृति लाभु जीर्न धनु तोरे ।
 देखा राम नये के भारे ॥
 कुषत दूष्टि रघुपतिहु न दोष ।
 मुनि बिनु काज करिय कत रोष ॥
 बोले चितय परशु की ओरा ।
 रे सठ सुनेहि सुभाव न मोरा ॥
 बालक बेलि बधउँ नहिं तोही ।
 केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
 बाल-ब्रह्मचारी अति-कोही ।
 विस्व-विदित कृत्रिय-कुल-द्रोही ॥
 भुज-बल भूमि भूप बिनु कीर्हीं ।
 विपुल बार महि-देवन्ह दीन्हि ॥
 सहसबाहु-भुज छेदनि-द्वारा ।
 परसु विलोकु महीप-कुमारा ॥

दा०—मातु-पितहि जनि सोच बस, करसि महीप-किसोर ।

गरभन के अरभ रु-दलन, परसु मोर अति घोर ॥

बिहँसि लषन बाले मृदु बानी ।

अहो मुनीस महा भट मानी ॥

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू ।

चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥

इहां कुम्हड़-बतिया कोउ नार्ही ।

जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥

देखि कुठार सरासन बाना ।

मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना ॥

भृगु-कुल समुझि जनेउ बिलोकी ।

जो कछु कहेउ सहउँ रिस रांकी ॥

सुर महि-सुर हरि-जन अरु गाई ।

हमरे कुल इन्ह पर न सुराई ॥

बधे पाप अप-कीरति हारे ।

मारतहु पा परिय तुम्हारे ॥

कोटि-कुलिस-सम बचन तुम्हारा ।

व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

दा०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, कमहु महा-मुनि धीर ।

सुनि सेराष भृगु-वंस-मनि, बोले गिरा गँभीर ॥

कौसिक सुनहु मंद यह बालक ।

कुटिल काल बस निज-कुल-घालक ॥

भानु - वंस - राकेम - कलंकू ।
 निपट निरंकुस अयुध असंकू ॥
 काल-कवलु हाँसहि छन माहीं ।
 कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥
 अब जनि देई दाष मोहि लेगू ।
 कटु-बादी बालक बध-जोगू ॥
 बाल बिलोकि बहुत में बाँचा ।
 अब यह मरन हार भा साँचा ॥
 कौसिक कहा क्षमिय अपराधू ।
 बाल-दाष-गुन गनहि न साधू ॥
 कर कुठार में अकरुन कोही ।
 आगे अपराधी गुरु-द्रोही ॥
 उतर दंत छाँड़उँ बिनु मारे ।
 केवल कौसिक सील तुम्हारे ॥
 न तु एहि काटि कुठार कठोरे ।
 गुरुहि उरिन हाँतेउँ स्म थारे ॥

श्लो०—गाधि-सुनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूक्ष्म ।

अजगध खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न वृक्ष अवृक्ष ॥

लषन-उतर आहुति सरिस, भृगु-घर-कोप कृसानु ।

बद्ध देखि जल-सम-वचन, बोले रघु-कुल-भानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोह ।

सूय दूध-मुख करिय न कोह ॥

जों पै प्रभु-प्रभाउ कछु जाना ।
 तौ कि बराबरि करत अयाना ॥
 जों लरिका कछु अनुचित करहीं ।
 गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
 करिय कृपा सिसु सेवक जानी ।
 तुम्ह सम-सील धीर मुनि ग्यानी ॥
 राम-वचन सुनि कछुक जुड़ाने ।
 कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ॥
 हँसत देखि नख-सिख रिस व्यापी ।
 राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
 गौर सरीर स्याम मन माहीं ।
 काल-कूट-मुख पय-मुख नाहीं ॥
 सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही ।
 नीच मीच-सम देख न मोही ॥

दो०—सुनि लळिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम ।

गुरु-समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी ।

बोले राम जारि जुग-पानी ॥

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना ।

बालक वचन करिअ नहिं काना ॥

बैँ बालक एक सुभाऊ ।

इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ ॥

तेहि नाहीं कछु काज बिगारा ।
 अपराधी में नाथ तुम्हारा ॥
 कृपा कोप बध बन्ध गोसाईं ।
 मो पर करिअ दास की नाई ॥
 कहिअ बेगि जेहि विधि रिस जाई ।
 मुनि नायक सोइ करउँ उपाई ॥
 कह मुनि राम जाइ रिस कैसे ।
 अजहूँ अनुज तब चितव अनैसे ॥
 एहि के कंठ कुठार न दीन्हा ।
 तो में काह कोप करि कीन्हा ॥

दो०—गर्भ स्वर्हि अवनिप-रमणि, सुनि कुठार-गति घोर ।

परसु अकृत देखउँ जियत, वैरी भूप-किसोर ॥

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती ।
 भा कुठार कुंठित नृप-घाती ॥
 भयउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ ।
 मोरे हृदय कृपा कसि काऊ ॥
 बंधु कहइ कटु संमत तोरे ।
 तू छल बिनय करसि कर जोरे ॥
 करु परितोष मोर संग्रामा ।
 नाहिं त छाँड़ कहाउब रामा ॥
 छल तजि करहि समर सिव-द्रोही ।
 बन्धु-सहित न त मारउँ तोही ॥

राम कहैउ रिस तजहु मुनीसा ।

कर कुठार आगे यह मीसा ॥

जेहि रिस जाइ करिय मोइ स्वामो ।

माहि जानिय आपन अनुगामी ॥

दो०—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु विप्र-धर रोसु ।

वेष बिलाकि कहैसि कछु, बालकहू नहि दासु ॥

देखि कुठार-वान-धनु धारी ।

भइ लरिकहि रिस बीर बिचारी ॥

नाम जान पैं तुम्हहि न चीन्हा ।

बंस-सुभाष उतर तेइ दीन्हा ॥

भृगुपति कहत कुठार उठाये ।

मन मुसुकाहि राम सिर नाये ॥

गुनहुँ लषन कर हम पर रोषू ।

कतहुँ सुधाइहुँ ते बड़ दोषू ॥

देढ़ जानि शंका सब काहू ।

बक्र चन्द्रमा ग्रसै न राहू ॥

जां तुम्ह अवतहु मुनि की नाई ।

पद रज सिर सिसु धरत गोसाई ॥

कमहु चूक अनजानत केरी ।

चहिय विप्र-उर कृपा घनेरी ॥

हमहि तुम्हि सरघर कस नाथा ।

कहह न कहाँ चरन कहँ माथा ॥

राम मात्र लघु नाम हमारा ।
 परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥
 देव एक गुन धनुष हमारे ।
 नव-गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
 सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।
 कम्ह ब्रिप्र अपराध हमारे ॥

दो०—बार बार मुनि ब्रिप्र-वर, कहा राम सन राम ।

बोले भृगुपति सरुष हाइ, तुहँ बंघु-सम घाम ॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही ।

मैं जम ब्रिप्र सुनावउँ नाही ॥

चाप स्रवा सर आहुति जानू ।

कोप मोर अति घोर कृसानू ॥

समिध सेन चतुरंग मुहाई ।

महा महीप भये पसु आई ॥

मैं यह परसु काटि बलि दीन्हें ।

समर-जग्य जग काटिक कीन्हें ॥

मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे ।

बालसि निदरि ब्रिप्र के भोरे ॥

भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा ।

अहमिति मनहुँ ज्ञीति जग ठाढ़ा ॥

राम कहा मुनि कहहु बिचारी ।

रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥

कुषतहि दूट पिनाक पुराना ।

मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना ॥

दा०—जों हम निदरहिं विप्रवदि, सत्य सुनहु भृगु-नाथ ।

तौ अस को जगसुभट्ट जेहि, भय-बस नावहिं माथ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना ।

सम-बल अधिक हाँउ बलवाना ॥

जों रन हमहि प्रचारइ कोऊ ।

लरहिं सुखेन काल किन हाँऊ ॥

क्षत्रिय-तनु-धरि समर सकाना ।

कुल-कलंक तेहि पाँवर जाना ॥

कहउँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी ।

कालहु डरहिं न रन रघु-वंसी ॥

विप्र वंस के असि प्रभुताई ।

अभय हाँइ जो तुम्हहिं डराई ॥

सुनि मृदुवचन गूढ़ रघुपति के ।

उधरे पटल परसु-धर-मति के ॥

राम रमापति कर धनु लेहू ।

खेंचहु मिटै मोर सन्देह ॥

देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ ।

परसुराम मन विसमय भयऊ ॥

दा०—जाना राम-प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात ।

जेरि पानि बाले बचन, हृदय न प्रेम समात ॥

जय रघुवंश - बनज - बन - भानू ।
 गहन - दनुजकुल - दहन कृसानू ॥
 जय सुर - बिप्र - धेनु - हित - कारी ।
 जय मद - मोह - काह - भ्रम - हारी ॥
 विनय - सील - करुणा - गुन - सागर ।
 जयति वचन-रचना अति नागर ॥
 सेवक-सुखद सुभग सब अंगा ।
 जय सरीर-रुचि कोटि अनंगा ॥
 करउँ काह मुख एक प्रसंसा ।
 जय महेश - मन - मानस - हंसा ॥
 अनुचित वचन कहेउँ अग्याता ।
 कुमहु कुमा-मन्दिर दोउ भ्राता ॥
 कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू ।
 भृगुगति गये बनहिं तप हेतू ॥

अभ्यास

- १—परशुराम जी की संक्षिप्त जीवनी बताओ ।
- २—परशुराम और लक्ष्मण की बातचीत का दृश्य गद्य में लिखो और नाटक की भाँति उसका अभिनय करो, कहीं कहीं तुलसीदास की चौपाइयों का भी प्रयोग करो ।
- ३—परशुराम जी को रामचन्द्र ने किस प्रकार सन्तुष्ट किया ?
- ४—रघुवंश-बनज-बन भानू, सुर-बिप्र-धेनु-हित-कारी इनके समास बतलाओ ।

४०—समुद्र-यात्रा का आनन्द

समुद्र-यात्रा का मज़ा वर्षा ऋतु में अरब-सागर पार करते समय बम्बई और अदन के बीच मिलता है। उस समय की बात याद आते ही इस समय भी रोमांच हो आता है और साथ ही हँसी भी आती है। एक ओर भारत छोड़ने का खेद और दूसरी ओर समुद्र की बीमारी।

बम्बई में अगस्त में वर्षा का पूर्ण रूप दिखाई पड़ता है। रात दिन की वर्षा से चित्त व्याकुल हो जाता है। ऐसे समय समुद्र के किनारे चौपाटी पर जाकर समुद्र के दर्शन करने और उसके भयङ्कर और उग्र रूप को देखने से हृदय में डर पैदा होता है। हृदय की ऐसी अवस्था में जहाज़ पर आना ही एक तो बुरा है। तिस पर किनारे को छोड़ते एक हा धंटे बाच समुद्र में पहुँच जाने से चक्र का आना ऐसा शुरू होता है कि मनुष्य के होश गुम हो जाते हैं—भयङ्कर लहरों के साथ जहाज़ के ऊपर नीचे होाने के कारण तबीयत मिचलाने लगती है और उल्टा का मिलसिला जारी हो जाता है। जहाज़ की छत पर समुद्र का पानी बड़े वेग से आने लगता है और यह प्रतीत होता है कि जहाज़ टुकड़े टुकड़े होकर शीघ्र ही रसातल में पहुँचना चाहता है। ऐसी दशा में सब यात्री छत से नीचे उतार दिए जाते हैं और अपनी अपनी बन्द कोठरियों में जाकर झूठमूठ बिस्तर कहलाने वाली वस्तु पर लेट जाते हैं। परन्तु आराम कहाँ? तबीयत मिचलाती है, उल्टियाँ

जारी ही रहती हैं और मन इतना मलिन और व्याकुल रहता है जितना शायद और किसी भी बीमारी में नहीं रहता। ऐसी अवस्था को सी-सिकनेस (समुद्र की बीमारी) कहते हैं। यह एक विचित्र बीमारी है। जहाज़ के ऊपर नीचे हाने के कारण यात्री के पेट में इतनी खलबली मच जाती है कि उसके भीतर कोई चीज़ नहीं रह सकती।

परन्तु देखने में आया है कि यह समुद्र की बीमारी किसी को अधिक और किसी को कम होती है। जहाज़ के मल्लाहों को जहाज़ पर सब तरह की अवस्था में रहने का इतना अभ्यास हो जाता है कि उन्हें भयङ्कर से भयङ्कर तूफान में भी कुछ पता नहीं चलता। क्रोध तो उस समय आता है जब हम तो बीमार पड़े हुए व्याकुलता से आह मार रहे हों और एक मल्लाह आनन्द से विचरता और हमारी हीन अवस्था को देखकर हँसता है। अधिक व्याकुल होकर जब कोई बीमार यात्री जहाज़ के डाक्टर को बुलाना है तब डाक्टर भी हँसकर कह देता है कि कुछ चिन्ता की बात नहीं, शीघ्र अच्छा हो जायगा। उस समय ऐसा मालूम होता है मानों सारे संसार ने हमारे विरुद्ध जाल सा रच रक्खा है।

देखने में आया है कि मनुष्य की प्रकृति और स्वास्थ्य के अनुसार यह बीमारी किसी को अधिक और किसी को कम होती है। इसके सिवा दो चार बार समुद्र-यात्रा कर लेने पर भी यह बीमारी कम होती है।

मेरी दूसरी समुद्र-यात्रा में मेरे साथ मेरे एक मित्र थे। बम्बई क़ाँड़ते ही ये सख़्त बीमार हो गये थे; परन्तु मैं करीब करीब चढ़ा था। मुझे इधर उधर घूमते और आनन्द से भोजन करते देखकर मेरे मित्र को आश्चर्य होता था, क्योंकि वे सारी यात्रा में लगभग बीमार ही पड़े रहे। उन्हें यह शक़ होने लगा कि मेरी सहानुभूति उनसे नहीं है और मुझे कोई बेसी औपधि मालूम है जिसे सेवन करने से मैं चढ़ा रहता हूँ और उन्हें नहीं बतलाता। परन्तु वास्तव में बात यह है कि इस बीमारी में कोई भी सहायता फलीभूत नहीं होती। मेरी वापसी की यात्रा में मेरे जहाज़ पर एक पारसी युवा कन्या मार्सेल से चढ़ी; पर यात्रा के आरम्भ से समाप्ति तक वह बराबर बीमार ही पड़ी रही और बम्बई में उतरने पर उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल और क्षीण हो गया था।

इंग्लैंड से जहाज़ पर सवार होकर मार्सेल आने में बीच में पुर्तगाल देश के पश्चिमी तट पर बिस्के की खाड़ी बड़ी भयानक और विकट मिलती है। कोई भी मौसम क्यों न हो, इस भयानक खाड़ी को पार करने में प्रायः बड़ा कष्ट होता है। खास कर जाड़े की ऋतु में तो ज़रूर तूफ़ान का सामना करना पड़ता है। वे लोग बड़े भाग्यशाली समझे जाते हैं जो अन्तिमपूर्वक इस खाड़ी को तय कर लें।

जाड़े में इंग्लैंड से अमेरिका जाते समय भी बहुधा तूफ़ान का सामना करना पड़ता है। इस यात्रा में सन्तोष की बात

यह है कि जहाज़ बहुत बड़े बड़े होते हैं। उनका वजन इनना अधिक होता है कि समुद्र को तेज़ और शक्तिशाली लहरों को टक़रों की मार खाकर भी वे अधिक नहीं हिलते इधर भारत को आने जाने वाले जहाज़ों का वजन अधिक से अधिक बारह हज़ार टन होता है। इसका कारण यह है कि इन्हें स्वेज़ की तंग नहर पार करनी पड़ती है। पर अटलांटिक महासागर पर चलने वाले जहाज़ों का वजन साठ साठ हज़ार टन तक का होता है। वे जहाज़ खासे महल से होते हैं। इनमें आनन्द की सब सामग्री और सारे सामान प्रस्तुत रहते हैं। स्नान करने के लिये सुन्दर कुण्ड और सब लोगों के एक साथ मिलकर खाने के लिए सुहावना बड़ा कमरा होता है। सभा, सङ्गीत तथा नाटक इत्यादि के लिए तरह तरह के खेलों की और और सामग्री भी उपस्थित रहती हैं। परन्तु तूफ़ान के समय ये आनन्द की सब चीज़ें व्यर्थ हो जाती हैं। पलंग पर लेटे रहने के अतिरिक्त किसी भी बात की सुध नहीं रहती। अच्छी अच्छी खाने की चीज़ें एक ओर और खेलने की चीज़ें दूसरी ओर पड़ी रहती हैं, उन्हें कोई नहीं पूछता।

जाड़े के बाद वसन्त-ऋतु में इंग्लैंड और अमरीका के बीच अटलांटिक महासागर की यात्रा बड़ी जोखिम की रहता है। जाड़े के दिनों में उसके उत्तर में सारा पानी जम कर बर्फ़ का पहाड़ सा बन जाता है। वसन्त आने पर वही पहाड़ टूट

कर कई भागों में बँट जाता है। फिर ये छोटे पहाड़ समुद्र गर्भ पर तैरते हुए दक्षिण की ओर समुद्र की लहरों के साथ बह आते हैं। दूर से यह धुआँ सा दृष्टिगोचर होती है जिससे आने जाने वाले जहाज़ों को कुहरें का भ्रम होता है और अपनी तेज़ चाल के कारण जहाज़ों की इस बर्फ़ के पहाड़ से टकरा हो जाती है, जिससे वे टुकड़े टुकड़े होकर डूब जाते हैं। पाठकों को अभी तक स्मरण होगा कि टाइटानिक नामक साठ हज़ार टन वज़न का एक बड़ा भारी और नया जहाज़ किस प्रकार अपनी प्रथम यात्रा ही में इस बर्फ़ के पहाड़ से टकराकर चूर हो गया था और अपने सारे कीमती माल और यात्रियों के सहित रसातल को पहुँच गया था।

गत योरोपीय महायुद्ध के समय खास कर समुद्र की यात्रा बड़ी भयंकर बन गई थी। जर्मनी के पनडुब्बी जहाज़ों ने (सब-मेरीन) जहाज़ी यात्रियों की नाक में दम कर दी थी। वे बिना किसी सोच विचार के जो जहाज़ मिलता उसी को डुबा देते थे। इसका कारण उनका यह सन्देह था कि यात्री-जहाज़ों के द्वारा बारूद तथा सिपाही छिपा कर भेजे जाते हैं। अतएव जर्मन लोग इनके साथ निर्दोष यात्रियों को भी समुद्र के नीचे पहुँचाकर रसातल का मज़ा चखा देते थे।

मेरे एक मित्र सात वर्ष के बाद अमरीका से अपने देश को लौट रहे थे रास्ते में वे इंग्लैंड में उतर पड़े—बड़े सोच विचार के बाद वे फ्रांस आने का एक जहाज़ पर बैठे, परन्तु रास्ते ही में

उनके जहाज़ को एक सबमेरान ने ऐसी ठकुर मारी कि उनका जहाज़ चकना चूर हो गया और तमाम यात्री अपने जीवन से सदैव के लिए हाथ धा बैठे। मेरे मित्र की लाश दूसरे दिन इङ्ग्लैंड के किनारे पर मिली। हम लाग उनकी लाश लन्दन ले आये और गोल्डर्स ग्रोन के स्थान पर उसका दाह-कर्म किया गया।

इसी प्रकार एक दूसरे मित्र सिटी आर्च बरमिचम नामक जहाज़ से देश का क़: वर्ष बाद अपने तमाम सामान के साथ वापस आ रहे थे। रास्ते में भार्सल बन्दर के निकट सबेरे के समय जर्मन का एक सबमेरीन ने जहाज़ को एक ऐसी ठकुर दी कि वह थोड़ी देर में अपने सारे साज सामान के साथ समुद्र के नीचे जा रहा। मेरे मित्र को सोभाग्यवश जहाज़ को एक नाव मिल गई थी। अतएव वे उसी का सहारा लेकर पचास घंटे तक बिना अन्न जल समुद्र पर उतराते रहे। दूसरे जहाज़ ने पहुँच कर उनको बचाया। मिस्र देश में उतरने पर उनके शरीर पर उनका कोई घख नहीं था।

ऐसे ही विकट समय में, मुझे भी इङ्ग्लैंड से स्वदेश का लौटना पड़ा था। परन्तु मैंने दक्षिण अफ़्रीका हाकर आने का निश्चय किया। इधर भी मेरे जापानी जहाज़ का पोछा एक सबमेरीन ने किया, किन्तु भाग्यवश बड़ी चतुराई से हमारे जहाज़ का कप्तान अपने जहाज़ को ले भागा। रास्ते में डूबे हुए जहाज़ों के सामान बहुत नज़र आये थे और कुछ लाशें भी उतराती हुई देख पड़ी थीं।

ये सब विपत्तियाँ होते हुए भी समुद्र यात्रा बड़ी रमणीय और स्वास्थ्यदायक होती है। समुद्र से निकल कर ओजोन वायु बड़े बड़े रोगों को दूर करती है। समुद्र-यात्रा भिन्न भिन्न देशों की भिन्न भिन्न जातियों और वस्तुओं का परिचय कराती है और ज्ञान की वृद्धि करती है। इसलिए यदि अवसर मिले तो इन तमाम आपत्तियों के होते हुए भी भारत के नवयुवकों को समुद्र-यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

—जगन्नाथ खन्ना

अभ्यास

- १—समुद्र की यात्रा क्यों लाभदायक है ?
- २—सिटी ऑफ़ बरमिन्गहम नामक जहाज़ से कौन यात्रा कर रहा था और उसका क्या नतीजा हुआ था ?
- ३—जाड़े में इङ्ग्लैण्ड से अमेरीका जाते समय किस बात का डर रहता है ?
- ४—शब्दार्थ लिखो—
दृष्टिगोचर, रसातल, सहानुभूति, औपधि, गर्भ, प्रस्तुत।

४१—गोवर्द्धन-धारण

(१)

एक बार नन्द आदि गोपों ने कृतज्ञता से;

ब्रज में सजाये साज सारे इन्द्रयाग के।

किन्तु लीलाशील ब्रजराज के वचन मान,

पूजा गिरि गोवर्द्धन इन्द्र याग त्याग के ॥

मान अपमान लुब्ध शक्र के सहस्र नेत्र,
 लाल लाल होकर अंगारे बने आग के।
 दीखा उस काल में कराल ज्वाल-जाल मानों,
 जलता विशाल कञ्ज-कानन में जाग के ॥

(२)

पावश निशा में ज्योतिरिङ्गणों से शाल-तुल्य,
 होकर सुशोभित सहस्रनेत्र रोष से।
 नीर भरे मेघों को बुलाकर समस्त शीघ्र,
 बोला यों उन्हीं के से गँभीर धीर घोष से।
 हाँकर मदान्ध-मूढ़ गोपों ने हमारा भाग,
 गिरि को दिया है एक बालक के दोष से।
 प्रलय बिना ही अभी प्रलय मचाओ सभी,
 जाओ बेग ब्रज को बहाओ धारि-कोष से ॥

(३)

पाकर सुरेश के निदेश को अशेष मेघ,
 आये ब्रज देश-मध्य गज मतवाले से।
 ढाये व्याम बीच सूर्य सोम को छिपाये हुए,
 तान पवमान ने घितान दिये काले से।
 दिन का विनाश हुआ रात का विकास मानों,
 दीखे ठाठ बाट हाट घाट के निराले से।
 होने लगा जल से प्रपूर्ण शीघ्र सारा थल,
 फूट पड़े इन्द्र के मलीन-मन-झाले से ॥

(४)

करते हुये सिंहनाद-रूप धार शब्दों का,
 वज्रती यथैव नई दुन्दुभी मढ़ाई है ।
 धायु के धिमान पर मान भरे बैठे हुये,
 शम्पा-रूप कोष की करालता बढ़ाई है ।
 घेर वज्र मण्डल को बीर नीरदों ने आज,
 तारों के समान नीर-धारा आन ढाई है ।
 मानों राष-घोष कर द्वेष से तमोगुण की,
 ताप-पूर्ण सत्व गुण-काष पै चढ़ाई है ॥

(५)

आने लगीं वन से रँभाती हुईं गायें शीघ्र,
 भागे गोपवृन्द वेग सारे सराबोर से ।
 कान पड़ी बात भी सुनाई पड़ी नेक नहीं,
 मेघों ने मचाया शोर ऐसे बड़े ज़ोर से ।
 दौड़े खेल क़ोड़ क़ाड़ बालक जो ठौर ठौर,
 दीखे वीथियों में बहे बारि की हिलार से ।
 मार कर कूक मानों मोरनी भी प्यार भरी,
 बोली बार बार छिपने को कहीं मोर से ॥

(६)

काले काले बारि वाले मेघों में प्रकाश छिपा,
 मानो वज्र अन्धकार सिन्धु में समा गया ।

बार बार बाड़व-शिखा का भाँति भीतिकर,
 अम्बर में दामिनी-विभास भूरि भागया ।
 होने लगी घोर नीर-वर्षा ब्रज बारने को,
 ' त्राहि त्राहि त्राहि ' शोर चारों ओर द्वागया ।
 धीरज समीर के झकड़ों में सभी का उड़ा,
 पाहि पाहि प्रेत्य-प्रसङ्ग पास आ गया ॥

(७)

अच्युत ! अनेक बार की है ज्यों दया की दृष्टि,
 ज्यों ही आज नेक उसी दृष्टि से निहार लो ।
 कौन है सहायक हमारा और चक्रपाणे !
 शरण तुम्हारे ही सदा से हैं विचार लो ।
 हा हा हा ! अनार्यों को सनाथ करने के लिये,
 ग्रीधता के साथ नाथ ! हाथ को पसार लो ।
 डूबते हैं दीन दीनबन्धों ! अध-सिन्धु-मध्य आज,
 चाहो जो उबारना ता वेग ही उबार लो ॥

(८)

डूब रहा है पुराय-भूमि आज ब्रजराज ! देखा,
 कैसे हा ! बचेगी जो न आप ही बचाओगे ।
 ध्वंस हुआ जाता सौरभेयी-वंश कंसरिपो,
 नष्ट हुआ गोकुल क्या दूसरा बसाओगे ।
 जाते अहो ! मारे ये तुम्हारे सारे प्यारे जन,
 माधव ! मुरारे ! कैटभारे ! अब आओगे ?

देर जो लगाओगे न पाओगे किसी को यहाँ,
पीछे पड़ताओगे, कठोर कहलाओगे ॥

(९)

विविध प्रकार व्रज वासियों की वाणियों को,
देख के विलाप-लीन कातर कलत्र सा ।
द्रवित हुये हैं नन्द-नन्दन अमन्द मानों,

खोल दिया दिव्य दया-दान का सुसत्र सा ।
करि-सम भूम भुक बाई त्रिगुनी पै अहा !

गोवर्द्धन गोत्र उठा रक्खा पद्म-पत्र सा ।
आती बारि-वृष्टि व्याम सेथी दृष्टि यत्र यत्र,
तान दिया तत्र तत्र एक सृष्टि-कुत्र सा ॥

(१०)

दूर हुई आपदा अशेष व्रज मण्डल की,
बलि करि हारी मेघ-मण्डली बिचारी है !

चारों ओर फैली ध्वनि हर्ष और विस्मय की,
देखो, धरा मध्य दिव्य-दृश्य मनाहारी है ।

शैल तो उठाये हरि आप करि-कञ्ज मानों,
जाती मरी बाँझ से यशोदा मातु प्यारी है ।

दबि मति जाय मेरो वारो कीन्ह प्यारो हाय !
नेक न सहारो, धारो भारो भूमि धारी है ॥

(११)

मान मधवा का हरने को, भरने को मोद,
निष्फल प्रहार करने को मेघ-माला के ।



गोबर्धन-धारण

रक्खा गिरि नख पै किशोर श्याम सुन्दर ने,
भक्तों को पिला के पूर्ण प्याले हर्ष हाता के !

* * * *
* * * *

(१२)

हलधर बन्धु को उठाये गिरिराज सुन,
आई वृषभानुज मराल की सी चाल से ।
देख सखियों के सङ्ग सुन्दर लता सी उसे ।
मुग्ध गिरिधारी हुष चञ्चल तमाल से ।
डगता जान कम्प से करस्थ शैल क्रीड़ा का,
व्रीड़ा घण बन्द किये लांचन विशाल से ।
पेसे घनश्याम का पवित्र स्वेद नीर जाल,
त्राण करे सर्वदा कराल काल ज्वाल से ॥

(१३)

बोले गिरिधारी राधिका को देख ललिता से,
“ तू भी दे सहारा सखी शैल बड़ा भारी है ।”
सुन ब्रज राज की रसीली उक्ति युक्ति भरी,
हँस वह बोली गिरा नित्य ही सो न्यारी है ।
“ गर्व न जनाओ श्याम ! वाम कर शैल धरे,
राधिका का अङ्ग है सो शक्ति क्या तुम्हारी है ?”

ललिता की चातुरी से लज्जा और हर्ष भरी,
युगल किशोर जोड़ी रक्तक हमारी है ॥

(१४)

सान दिन बीते वृष्टि होते हुये अम्बर से,
हाथ पर गोपीनाथ भूधर धरे रहे ।
बाँका हुआ बाल भी किसी का नहीं धारिदों से,
मानों वृत्त आदि सभी हर्ष से हरे रहे ।
हो कर तब हाँस में सुरेश पड़ा पैरों में,
दीन उसे देख आप राष से परे रहे ।
धन्य हैं वे सज्जन शिरामणि प्रणाम योग्य,
ऐसे भगवान की जो भक्ति से भरे रहे ।

(१५)

चरित विचित्र हैं तुम्हारे रमानाथ ! सारे,
जगत पिता हो कभी नन्द के दुलारे हो ।
तस्कर कभी हो नवनीत के धनीत कभी,
हिम के फुहारे कभी आग के अंगारे हो ।
निगुण कभी हो कभी सगुण अनेक एक,
योगियों के ईश कभी गोपियों के प्यारे हो ।
नटखट पूरे नटराज हो ! कहाँ लो कहें,
मन की द्विपी है क्या मन में हमारे हो ॥

—मैथिली शरण गुप्त

अभ्यास

- १—कृतज्ञता, शक्र, कञ्ज, ज्योतिरिङ्गणों, शाल, पवमान, मलीन मन
छाले से, यथैव, शम्पा, स्तवगुण, सौरभेयी, गोत्र, ओजवाली
शब्दों के अर्थ लिखो ।
- २—इन्द्र के कोप करने का कारण अपनी सरल भाषा में लिखो ।
- ३—इस कविता को पढ़ कर कृष्ण के हृदय का कौन आदर्श गुण
तुम्हारी समझ में आया उनका वर्णन स्पष्ट रूप से करो ।

४२—महर्षि दधीचि

(१)

दधीचि एक बड़े प्राचीन महर्षि हैं । पुराणों में इनका उल्लेख अवश्य है, पर कोई विशेष इनका परिचय नहीं है । सिर्फ इनके एक कार्य का परिचय मिलता है । कहीं कुछ कम है और कहीं अधिक । उस कार्य के अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ मालूम नहीं, ये किस कुल में उत्पन्न हुए थे, कहाँ कहाँ इन्होंने तपस्या की थी, किसी राजा को यज्ञ कराया था कि नहीं, किस से इन्होंने शास्त्र अध्ययन किया था, किस से इनका प्रेम था और किस से द्वेष आदि बातों का कहीं उल्लेख नहीं ।

एक घटना के बल पर किसी का सदा के लिए प्रसिद्ध हो जाना आश्चर्य की बात है । लोगों के लिए बड़ी बड़ी पुस्तकें बनती हैं, सालों और महीनों की कौन कहे दिनों घंटों और मिनटों तक की बातें लिखी जाती हैं, मित्रों का परिचय दिल खोल कर दिया

जाता है। फिर भी उनका नाम अमर नहीं रहता। उनकी मृत्यु हुई और दो तीन वर्ष बीतते न बीतते लोग उन्हें भूल जाते हैं, घटनाओं की माला से लबालब भरी वह पुस्तक एक काम नहीं आती। वह पुस्तक सामने पड़ी रहती है, फिर भी लोग उस पुस्तक के नायक का स्मरण करना कर्त्तव्य नहीं समझते। ऐसी दशा में दधीचि का लोग नहीं भूलते, जिनके बारे में कहीं दस और कहीं पच्चीस पंक्तिमात्र लिखी हैं; यह सचमुच आश्चर्य की बात है और आनन्द की भी।

स्मृति के लिए घटना में महत्व होना चाहिए। जिस जीवन से किसी एक भी महत्व पूर्ण घटना का सम्बन्ध हो जाता है वह सदा के लिए अमर हो जाता है, चाहे उसके लिए कुछ लिखा जाय या न लिखा जाय, चाहे उसका जीवन चरित्र चित्र के साथ प्रकाशित किया जाय या न किया जाय। महर्षि दधीचि के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटना भी ऐसी ही है, यह बड़ी ही महान् है, अद्भुत है, अनुपम है।

मनुष्य अपने गुणों के कारण अमर होता है, और उन गुणों में त्याग सब से बड़ा गुण है। त्याग भी कई प्रकार का होता है। त्याग में भी छोट्टाई बड़ाई हुआ करती है। जिस त्यागी के त्याग का विशेष सम्बन्ध प्रियता से होता है, अर्थात् जो सब से प्रिय वस्तु का त्याग करता है वही त्यागी श्रेष्ठ समझा जाता है और उसका त्याग भी अन्य त्यागों से श्रेष्ठ होता है इसमें सन्देह नहीं।

रुपये पैसे का त्याग कोई बड़ी बात नहीं। पर जिसवस्तु का त्याग कठिन है उसका यदि कोई त्याग करे, तो अवश्य ही महान् है और उसका त्याग भी महान् है।

मनुष्य अपने सुख के लिए सारे प्रयत्न करता है, और वह सुख शरीर के द्वारा वह भोगता है। महर्षि दधीचि के सामने आकर इन्द्र ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—महाराज, देवगण बड़ी विपत्ति में हैं, कृपा कर उनकी रक्षा कोजिये, देवताओं की रक्षा के लिए आपके शरीर की हड्डि की आवश्यकता है।

दधीचि ने इन्द्र की प्रार्थना सुनी और हँस कर कहा—सांसारिक जीवों की ममता शरीर ही पर हुआ करती है और वही तुम माँगते हो। खैर मुझे शरीर से प्रेम नहीं, तुम यदि इसे चाहते हो, इससे यदि तुम्हारा लाभ हो तो हाज़िर है। इस त्याग का क्या मूल्य है ?

(२)

महर्षि दधीचि किसी वन में रहा करते थे, वहाँ इनका सुन्दर आश्रम बना था। आश्रम के आस पास की भूमि वृक्षों और लताओं से हरी भरी थी, पास ही एक नदी थी। उस आश्रम में और भी अनेक शिष्यार्थी ऋषि रहा करते थे। इन सब का काम था अध्यात्म चिन्तन, शास्त्रों का पठन पाठन तथा बाकी समय संसार के कुल कपट से अनभिज्ञ पशुओं से कोड़ा। दधीचि वहाँ के कुलपति थे। वह एक मनोहर दृश्य था; जिसकी हम लोग इस समय कल्पना भी नहीं कर सकते।

महर्षि दधीचि की आयु बहुत बीत गयी थी। इन्होंने अनेक अध्यात्म विषयों का पता लगाया था, ये अपने समय के ऋषि महर्षियों में सर्वश्रेष्ठ थे। अन्य अन्य स्थानों के भी ऋषि महर्षि इनके यहाँ समय समय पर आया करते थे और अपना अपना सन्देह मिटाया करते थे। महर्षि दधीचि को इस काम में बड़ा आनन्द आता था। ये लोगों के सन्देहों को दूर करने के लिए सदा तैयार रहा करते थे। इस कारण दूसरे भी इनसे बड़ा प्रेम करते थे, और इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा करते थे। एक दिन महर्षि दधीचि के आश्रम पर ऋषि महर्षियों की भीड़ लगी हुई थी, देवासुर संग्राम पर विचार हो रहा था—देवताओं को असुर व्याकुल कर रहे हैं, देवताओं से कुछ करने धरते नहीं बनता, देवगुरु बृहस्पति का ज्ञान कुंठित हो गया है, इन्द्र का पराक्रम इस समय बेकार है, देव नेना निकर्मा हो रही है, देव गण भस्म हो रहे हैं, भय के मारे खाना पीना भूल गये हैं।

एक ऋषि ने पूछा—ऐसा क्यों हो रहा है ?

दूसरे ऋषि ने कहा—दुर्बल को बली दबाता है, यह साधारण नियम है। असुर बलवान् हैं।

इसी प्रकार के तर्क वितर्क वहाँ हो रहे थे, कोई कुछ कहता था और कोई कुछ। महर्षि दधीचि चुप थे। वे उनकी बातें सुन रहे थे कि नहीं यह भी कुछ स्पष्ट रीति से नहीं कहा जा सकता। उनकी चेष्टा से मालूम होता था कि वे कुछ सोच रहे हैं। वहाँ उस समय जो बैठे थे उनका उधर ध्यान न था वे तर्क वितर्क में

ही लीन थे। उसी समय सहसा लोगों के सामने एक वृद्ध ब्राह्मण उपस्थित हुआ। लोगों ने उसका स्वागत किया। महर्षि ने तीखी नज़र से उसकी ओर देखा। वह घबड़ा गया और खड़ा होकर हाथ जोड़ कर बोला—महाराज, मैं इन्द्र हूँ, ब्राह्मण वेश में मैं आपकी सेवा में इस लिये उपस्थित हुआ हूँ कि मुझे कुछ आप से माँगना है; अतएव माँगने के उपयुक्त यह रूप मैंने धारण किया है।

महर्षि ने कहा—इन्द्र, तुम कुल के लिये प्रसिद्ध हो, तुम अपनी इसी कुल प्रधान नीति के कारण इस समय दुःख उठा रहे हो और तुम्हारी इस अयोग्यता का फल समस्त देवों को भोगना पड़ रहा है। यह तुम को निश्चयरूप से जान लेना चाहिए कि कुल में विजयी होने की शक्ति नहीं है, तुम इतने समय से देव-राज्य का पालन कर रहे हो, तुम्हें इस स्पष्ट सत्य का अनुभव हो जाना चाहिए था, पर दुःख है कि वह अभी नहीं हुआ।

इन्द्र ने कहा—महाराज, नीति मेरी नहीं है, किन्तु वह बृहस्पति की है। मैं बृहस्पति की नीति का कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न भर सक करता हूँ। ऐसी दशा में नीति के कारण जो असफलता होती है, उसका दोष मुझ पर नहीं हो सकता।

महर्षि ने कहा—इस सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नहीं है, पर आपको इस से यह न समझ लेना चाहिये कि मेरी दृष्टि में आप नीति के सम्बन्ध में निर्दोष साबित हो गये। आपकी इन बातों का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है, मैं पहले जैसा आपको मा० सो० द्वि—१४

दोषी समझता था वैसा ही अब भी समझता हूँ। आपका यह कहना सच है कि आप बृहस्पति की आज्ञाओं का पालन करते हैं, उनकी बतलाई नीति पर चलते हैं। पर इससे क्या हुआ। चलने वाले तो आपही हैं। बृहस्पति चलाने वाले हैं; वे चलने वाले में जैसा बल देखेंगे, उसकी जैसा प्रवृत्ति देखेंगे, उसी प्रकार उसका चलने के लिए भी कहेंगे। सभी मनुष्य सश्र उपायों का अनुष्ठान नहीं कर सकते। अतएव सभी के लिए एक समान उपदेश भी नहीं हुआ करता। इस बात को समझना संचालक की खूबी है। इस बात को समझ कर जो उपदेश देता है, उसका उपदेश कार्यकारी होता है, उसका उपदेश सार्थक है, वह अपने उपदेश द्वारा अपने शिष्य का कल्याण कर सकता है।

इन्द्र चुप रहे, उन्होंने कुछ कहने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। यह देखकर महर्षि दधीचि ने कहा—कहां क्या कहना चाहते हो, कोई भय नहीं। इन्द्र ने कहा—महाराज, आप को मालूम ही है कि इस समय दंष्ट्राओं पर कैसी विपत्ति पड़ी हुई है, वे इस समय कितने दुःख भोग रहे हैं। मेरा बल व्यर्थ हो गया, बृहस्पति की नीति से भी कोई फल नहीं निकलता। हम सब लोग हताश हो कर ब्रह्मदेव की शरण गये थे, उनसे हम लोगों ने अपने दुःख सुनाये और उनके दूर करने में सहायता माँगी। ब्रह्मदेव की हम लोगों ने बड़ी स्तुति की, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने उपाय बतलाया। उसी के लिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ।

इतना कह कर इन्द्र चुप हो गये। महर्षि भी चुप थे। इसी तरह कुछ समय बीत गया, पर इन्द्र न बोले। तब महर्षि ने कहा—कहिप, आप को मुझे से इस सम्बन्ध में क्या कहना है। आप संकोच क्यों करते हैं, जो कुछ आप कहना चाहते हैं निःसंकोच होकर कहें।

इन्द्र ने कहा—महाराज, मैं आप से कुछ प्रार्थना करने आया हूँ। देवताओं के कल्याण के लिए ब्रह्मदेव की आज्ञा से मैं आप से कुछ माँगना चाहता हूँ। आप महर्षि हैं, आपको सब विषयों का यथार्थ ज्ञान है, आज्ञा है आप मेरी प्रार्थना पूर्ण करेंगे, आप मुझे हताश न करेंगे।

महर्षि ने कहा—आप जो कुछ कह रहे हैं वह अपने विचार से ठीक ही कह रहे हैं, उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है, पर आप की प्रार्थना क्या है, यह अभी तक मुझे मालूम न हुआ। आप असली बात ज़िपाते हैं और इधर उधर की अनेक बातें करते हैं। ऐसी दशा में मैं अपने कर्तव्य का निर्णय कैसे कर सकता हूँ।

इन्द्र ने कहा—महाराज, ब्रह्मदेव ने कहा है कि वृत्रासुर का नाश तुम लोगों के पराक्रम से नहीं हो सका। उसके नाश का एक ही उपाय है और वह यह है कि महर्षि दधीचि की हड्डी का वज्र बनाया जाय और इन्द्र उससे युद्ध करें, तब वह पराजित होगा, नहीं तो नहीं। इसी कार्य के लिये मैं आया हूँ। आप महर्षि हैं, आप ही लोगों के सहारे देवताओं की स्थिति है।

महर्षि ने कहा—देवराज इन्द्र, आपके बिना कहे भी मैं आपके आने का उद्देश्य जानता था। पर मेरी इच्छा थी कि वह मैं आपके मुख से स्पष्ट सुनूँ। पर वह मेरा मनोरथ पूरा न हो सका। मैंने बहुत प्रयत्न किया, कई बार पूछा, तब जाकर आपने कहीं कहने की कृपा की सो भी घुमा फिरा कर, साफ़ साफ़ नहीं। आप लोगों का स्वभाव ही है, राज्य-प्रकरण के संसर्ग से लोगों की प्रकृति भी बक्र हो जाती है, उनकी बातें भी बक्र हो जाती हैं। आप तो देवराज हैं, फिर इन बातों की आप में कमी कैसे रह सकती है! साफ़ बातें करने की आदत आप कहाँ से पा सकते हैं। अच्छा जाने दीजिए। उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नहीं। हाँ एक इच्छा थी, चाहता था कि आपके मुख से साफ़ साफ़ बातें सुनकर एक नई बात समझूँ। राज-काजियों की प्रकृति में बदलाव देख कर प्रसन्न हो लूँ! पर चिन्ता नहीं, क्या सभी की सभी इच्छायें पूरी होता है! देवराज, आप जो हमारे शरीर की हड्डियाँ माँगने आये हैं, वह अपने कल्याण के लिये। आप मेरी हड्डियों से घज़ बनाना चाहते हैं, और उस घज़ से शत्रु का नाश कर देवताओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं, अपना एद कायम रखना चाहते हैं। कहिए यही बातें हैं न? तब आप को सोचना चाहिये था कि जिस प्रकार आप को अपना कल्याण प्रिय है, उसी तरह वह दूसरों को भी प्रिय है। लौकिक कल्याण भोगने और पारलौकिक कल्याण प्राप्त करने का साधन यह शरीर ही है, यह बात तो आप को मालूम

ही है। ऐसी दशा में आप अपने कल्याण पर दूसरे के कल्याण का बलिदान क्यों चढ़ाना चाहते हैं ?

इन बातों को सुनकर इन्द्र हताश हो गये, वे कुछ बोल न सके। महर्षि ने पुनः कहा—ये बातें मैं अपने सम्बन्ध में नहीं कह रहा हूँ। आप यह न समझिये कि इन बातों को कह कर मैं आपको निराश कर रहा हूँ। वे बातें अभी अलग हैं उनका उत्तर मैं थोड़ी देर के बाद देता। पर मैं देखता हूँ कि आप घबड़ा गये हैं। अतएव अब मैं योग क्रिया के द्वारा अपना शरीर काँड़ता हूँ, आप हड्डियों को ले लीजियेगा, और उनसे अपना मनोरथ सिद्ध कीजियेगा। महर्षि ने ऐसा ही किया, और यही वह एक घटना है, जिसके कारण महर्षि दधीचि मर कर भी अमर हैं।

—चन्द्रशेखर शास्त्री ग्राहिव्याचार्य

अभ्यास

- १—महर्षि दधीचि का नाम जिन घटना के कारण अमर है, उसका वर्णन अपनी भाषा में करो।
- २—तुमको जिस अन्य अमर पुरुष की कथा मालूम हो उसका वर्णन उस घटना के सहित जिसके कारण वह अमर हुआ है, लिखो।
- ३—तर्क वितर्क, वक्र, हताश इन शब्दों का प्रयोग अपने बनाये वाक्यों में करो।

परिशिष्ट (१)

द्वितीय भाग

शब्दार्थ तथा पाठ सहायक बातें

पाठ १—भव=संसार । नेति=न+इति, अन्त रहित, अनन्त ।
अगोचर=जो दिखाई न दे । आकृत=होते हुए, रहते हुए । बन्दी=भाट । कव्य=नैवेद्य, देवता की बलि या भेंट । कव्य=पितरों को दिया जाने वाला अन्न ।
गेय=गाने योग्य । अघिन=पापियों । पोखि=पोषण करके ।

” २—शिष्ट=सदाचारी, सज्जन । व्यञ्जित=प्रकाशित, मालूम ।
विगतस्पृह=लोभरहित, त्यागी । येर्स=आपका ।
फंतफुल=विश्वासनीय । विधायक=निर्णय करने वाला, सिद्धान्त बनाने वाला । मृग-चर्म परिच्छिन्न व्याघ्र=हिरन का चमड़ा ओढ़े बाघ, बाहर से अच्छा रूप भीतर कपट और करता ।

” ३—“जिसको.....आधा संसार” का भावार्थ—आधा संसार अर्थात् चीन, जापान और श्याम आदि अब तक बौद्ध धर्म के मानने वाले हैं । राजा अशोक ने समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी विजय की थी अपनी इतिहास पुस्तक देखो । तान सेन ग्वालियर के बहुत प्रसिद्ध गायक थे ।

” ४—मशीन=यन्त्र, कल । फेशन=बनाव चुनाव, तर्ज ।

पाठ ५—स्वार्थ-तम = स्वार्थरूप अन्धकार । सुसमीर = सुन्दरवायु ।
पल्लव = पत्ता । स्वत्व = अधिकार ।

” ६—वैज्ञानिक अन्वेषण = विज्ञान सम्बन्धी खोज । अन्नय = न
नाश होने वाला । युक्ताहारविहार = योग्य भोजन और
उचित विहार । धूम्रपान = सिगरेट और हुक्का आदि-
पीना । मदिरा = शराब । निरामिष = मांस रहित । सर्व
रागे मत्ताश्रय = मल के दोष से ही सब राग होते हैं ।
एडोसन—टामस एलवा । एडोसन सन् १८४७ ई० में
अमरीका के मिलन नगर में उत्पन्न हुए थे । बचपन में
आपने तार घर में नौकरी की और वहाँ तार का काम
सीखा विद्युत् सम्बन्धी आपने बहुत आविष्कार किये और
फोनाग्राफ़ का आविष्कार आपने सन् १८७८ में किया
जिससे यह संसार प्रसिद्ध हुए ।

हेनरी फ़ोर्ड—अमरीका को फ़ोर्ड कम्पनी के स्वामी हैं ।
यहाँ जो फ़ोर्ड मोटरें बिकती हैं वे आपके ही कारखाने की
बनी होती हैं । इन्होंने साधारण अवस्था से इतनी उन्नति
की है कि आज कल संसार के धनियों में प्रसिद्ध हैं ।
ये दानी भी बहुत बड़े हैं । इस समय बुढ़ापे की अवस्था
में भी पूर्ण कार्य करते हैं ।

” ७—बलवर्द्धक = बल बढ़ाने वाला । समाधि = ध्यान, योग
की क्रिया । त्वार = झूठे । वियुक्त = सहित । प्रतिभा =
आसाधारण बुद्धि । किरीटि = मुकुट । कृपाण = तलवार ।
अवनी = पृथ्वी । अविरुद्ध = अनुकूल । जलयान = नौका ।
अपान = पाद, गुदास्थवायु । उदान = प्राण वायु, कण्ठस्थ
वायु । व्यान = प्राण ।

पाठ ८—उद्गम=निकाश । पुरातत्वज्ञ=प्राचीन तत्वों के खोजी ।
 जत=सौ । योजन=४ कोस । नय=नीति । गपोड़बाजी=
 गप, झूठी बात । अरण्य=जंगल । गुलेबकावली=
 बकावली के फूल । पार्वत्य=पहाड़ी ।

” ९—विश्वपारावारा=संसार समुद्र । प्रखरतर=बहुत तेज़ ।
 गिरि-तुल्य=पहाड़ के समान, बहुत बड़ा । अधखिले=
 बालपन । व्योम=आकाश । सान्त्वना=श्रेय्य, सन्तोष ।

” १०—कर्ष=निरोध, जोश । धूल में=व्यर्थ । शिष्टाचार=
 सज्जननायुक्त आचरण । समवयस्क=बराबर की आयु
 के । श्रोता=सुनने वाला । वक्ता=बोलने वाला ।
 उपात्मभ=निन्दा, शिकायत । आत्मप्रशंसा=अपनी
 तारीफ़ । सम्भाषण=बातचीत ।

” ११—प्रतिमा=मूर्ति । ध्रुव=अटल । संयत=सीमा के
 अन्दर । परिकर=कमर । अतीत=भूतकाल, बीता हुआ
 समय । भव पाश=संसार का फंदा । काय=शरीर ।
 प्रभुरति-सूत्र=भगवान् के प्रेम का तागा ।

” १२—पटल=पर्त, तह । आयात=आगत, आमदनी । उत्पादन-
 शक्ति=पैदावार की ताकत, उर्धरा शक्ति । निर्यात=
 निकासी । कायात्मिक=शरीर और आत्मा की ।
 युनाइटेड्स्टेट्स=अमेरिका का एक प्रान्त ।

” १३—बालार्क=बालसूर्य । सर्वाग्र=सब से आगे । कमनीय=
 सुन्दर । आलोक=प्रकाश । तटिनी=नदी । रश्मि=
 किरण । इन्द्र प्रभा=इन्द्र धनुष की चमक ।

” १४—नैसर्गिक=प्राकृतिक । चित्ताकर्षक=मन को खींचनेवाले ।
 आजानुबाहु=लम्बी भुजायें । तूल=लम्बी । हारीजंटल
 चार=विदेशी व्यायाम की वस्तु जिसमें दो खंभों के बीच

में एक लोहे की छड़ ६ फीट ऊँचाई पर लगी रहती है। उसी पर चढ़कर व्यायाम किया जाता है। संहार=नाश। कालनेमि=एक राक्षस था जिसको हनूमान जी ने मारा था। बाहुल्यता=अधिकता।

पाठ १५—लोल=चंचल। सोपान=सीढ़ी। त्रिविध भय=दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखों का डर। मज्जन=स्नान। ऐरावत=इन्द्र का हाथी जो समुद्र से निकला था। पवि=वज्र। ललकि=उत्कण्ठित होकर। धवल=श्वेत वर्ण।

” १६—“ हानहार बिरघान के होत चीकने पात ”=बालपन से ही अच्छे गुण दिखलाई देने लगते हैं। स्मृति=धर्मशास्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य आदि।

” १७—अपलाप=असत्य। अभिशाप=शाप, दोष। षड्यंत्र=जाल। उपाधि=पदवी। चर्च=गिर्जाघर। कुत्रापि=कहीं भी। स्वच्छन्द=स्वाधीन।

” १८—लाट=खंभा, स्तम्भ। लायब्रेरी=पुस्तकालय।

” १९—अवधेश (अवध+ईश)=अयोध्या के स्वामी राजा दशरथ। शांच विमोचन=शांच को दूर कर देने वाले। जातक=पुत्र, बालक। मरंद=फूल। भृङ्ग=भौरा। अनंग=शरीर रहित, कामदेव। लोल=चंचल।

” २०—‘प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं’=अधिकार पाकर सब घमंडी हों जाते हैं। रांच=आतंक। श्लाघनीय=प्रशंसा के योग्य। भृगु—एक मुनि थे, इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनमें कौन बड़ा है। इसकी परीक्षा की थी। ब्रह्मा प्रणाम न करने से, शिव कुछ कहने से क्रोधित हो गये। ये विष्णु के पास गये। विष्णु सो रहे थे। उनकी क्रांती में ज़ोर से

लात मारी । जिससे वे जग पड़े और उदारता-पूर्वक भृश से कहने लगे कि आपके पैर में कहीं चोट तो नहीं लगी है ? यह भगवान की क्षमा-शीलता का अपूर्व उदाहरण है ।

पाठ २१—प्रसिद्ध स्वामी रामतीर्थ जी जब सन्यासी हुए थे उस समय यह कविता बनाई गई थी । लवपुर=लाहौर, महाराज रामचन्द्र के पुत्र लव की राजधानी होने के कारण लाहौर का नाम लवपुर भी है । केतु=ध्वजा, पताका, श्रेष्ठ । रियाज़ी=अंकगणित । रम्य-तटी=सुन्दर किनारों वाली । शिखा-सूत्र=चोटी और जनेऊ । ब्रह्मविद्या=परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान । सत्वर=शीघ्र । अलविदा=रुखसत, विदा । परिष्कृत=स्वच्छ, अलंकृत । तड़ित=बिजली । आतपत्र=छाता । श्वापद=हिसक, भयंकर जीव चीता शेर आदि । तत्पद=उसका चरण ।

" २२—कट्टरता=हठीपन । आधुनिक=आज कल की, नवीन । प्राच्य=पूर्वीय । आकृष्ट=खिचना । भव्य=सुन्दर । नग्नरूप=नंगारूप । आविर्भाव=उत्पत्ति । अभिनव=नूतन, नया । अहनिश=रात दिन ।

" २३—मुग्ध=मोहित । प्रशस्त=सुन्दर, विस्तृत । शस्य=अनाज । क्षणभंगुर=क्षण में नाश होने वाला ।

" २४—अविरल=लगातार । घन=बादल । आच्छन्न=घिरा हुआ है । शेक्सपियर = विलायत में एक प्रधान नाटककार हुआ है । अलका=कुँवरपुरी ।

" २५—वीथिकार्ये=गलियाँ । कूल=किनारा । कनकाभिराम=सोनहला सुन्दर मन्दिर ।

" २६—श्यामलसस्य=अनाज से भरा श्याम रंग का ।

पाठ २७—नैराग्यकारी = आरोग्यता देने वाली । पारसीक = पारसी जाति की । मरुवासिनी = राजपूताने की, रेतीले प्रान्त की । मदीय—मेरा । तदीय = उसका ।

” २८—सर्वोत्तम (सर्व + उत्तम) = सब से श्रेष्ठ । सर्वाङ्गीन = सब अंगों सहित । विवेक = ज्ञान । समक्ष = सामने । उच्छृङ्खलता = निरंकुशता । आपात = अधःपात, गिराव । कुपित = खराब । प्रतिभा = असाधारण बुद्धि । अविनय = धृष्टता, ढिठाई ।

” २९—बल = बलराम । बेनी (बेणी) = चाँटी । भूँ = भूमि । धनियाँ = धन्य है । पत्थाहि = विश्वास करना । रिंगाइ = दौड़ा कर ।

” ३०—विभक्त = बाँटना । रिक्त = खाली । कण्टकाकीर्ण = कांटों से भरा । अतिक्रमण = पार कर जाना । क्रान्ति = उपद्रव, उलट पुलट । स्फूर्ति = फुरण, धड़कन । कट्टर = हठी । पुरातन्ववेत्ता = प्राचीन काल की बातों का ज्ञान रखने वाले । गौण = साधारण । अन्वेषण = खोज । क्षमता = सामर्थ्य, शक्ति । सफलता उनकी चेरी हांती है = उन्हें सफलता अवश्य प्राप्त हांती है । धैर्यच्युत = धैर्य से गिरना । गवेषणा पूर्ण = खोज तथा ज्ञान बीन युक्त । पतञ्जलि = व्याकरण भाष्य कर्ता ऋषि थे । यह चन्द्रगुप्त के पीछे हुए हैं । ईसा से १८० वर्ष पूर्व इनका समय माना जाता है । कपालकल्पित = बनावटी, मिथ्या, मन गढ़न्त । “ धजियाँ उड़ा दीं ” = असत्य साबित कर दिया, नष्ट भ्रष्ट कर दिया । पाण्डुलिपि = मसविदा, खाका ।

” ३१—नन्दन = इन्द्र की बाटिका । त्वदीय = तेरा । मदीय = मेरा । अध्यात्म = ईश्वरीय ज्ञान । मरुभूमि = राजपूताना ।

चाप=धनुष । मनु=ब्रह्मा के पुत्र और मनुष्यों के आदि पुरुष । मेधावी=बुद्धिमान । स्वकृत्य=अपना कर्म ।

पाठ ३२—रसायन =कीमिया । पारम=मणि विशेष जिसको छूने से लोहा सेना हो जाता है । ज्ञानांपार्जन=ज्ञान उत्पन्न करना । प्रतिपादित=जो भली भाँति समझा दिया गया हो, निर्धारित । विस्फोटक पदार्थ=बाहद आदि । कृत्रिम=बनावटी ।

” ३३—मसलना=कुचलना । फवन=शोभा । गले का हार=प्यारा । पामाल=पैरों से रौंदना ।

” ३४—उद्विग्नता=व्याकुलता । क्यामत=प्रलय । कुफ़ू=छिपाना । सूफी=वेदान्ती ।

” ३५—कंस के निमन्त्रण पर जब यशोदा जी कृष्ण बलराम को नन्द जी के साथ मथुरा भेज रही हैं तब नन्द जी से कृष्ण और बलराम के विषय में कह रही हैं । थाती=धराहर । खरपवन=तेज़ हवा । दिनकर=सूर्य । म्लान=उदास । धनुष मख=धनुषयज्ञ । रजनि=रात ।

” ३६—बिलसैं=शोभा देती हैं । द्रुम=पेड़ । पल्लव=पत्ते । चित्र पटी=तसबीर । घितान=चँदोवा । कल=सुन्दर । परेवा=कबूतर । ह्यार=भेड़िया । लास (लाश)=शव । वासना=इच्छा । आतप=गर्मी । कानन=वन । तारका वृन्द=तारागण । अभग्न=पूर्ण । विभ्रम=चक्कर, भूल ।

” ३७—खद्यात=जुगनू । मात=हार । सिर रहे नवाई=लज्जित हो रहे हैं । हिमायती=सहायक । गंगादक=गंगाजल । चोली दामन का साथ=न छूट सकने वाला साथ । एकलिंग=उदयपुर के आराध्य देव, शिव मूर्ति का नाम ।

पाठ ३६—वृषभ कन्ध=बैल के से कन्धे । मुनिवसन=ब्राल के कपड़े । तून (तूण)=नरकस । मार-मद-मोचन=कामदेव के अभिमान को चूर करने वाले । बिलगाउ=अलग करा । विहाइ=छोड़कर । विपुल=बहुत । अरभक=बच्चा । राकेस=चन्द्रमा । निपट=बिलकुल । खोरि=दाप । कुलिस=बज्र । अयाना=मूर्ख । सरवर=बराबरी । ब्राह्मण के नव गुण—१ पढ़ना २ तप करना ३ सन्तुष्ट रहना ४ क्षमार्जालता ५ जितेन्द्रिय होना ६ ज्ञानी होना ७ दाता ८ दयालुता ९ पढ़ाना । सकाना=भयभीत हुआ ।

” ४०—चोपाटी=बम्बई में समुद्र के किनारे का एक स्थान । होश गुम हो जाते हैं=व्याकुलता बढ़ जाती है । उलटी=कै । पनडुब्बी=पाना के भीतर चलने वाले जहाज़ जो नीचे बड़े जहाज़ों को टक्कर मार कर तोंड़ देते हैं । नाक में दम कर दी थी=आफ़त कर दी थी ।

” ४१—शक्र=इन्द्र । कञ्जकानन=कमल वन । उद्योतिरिङ्गण=जुगनू । सहस्रनेत्र=इन्द्र । साम=चन्द्रमा । पवमान=वायु, हवा । मलीन मन ब्राले=मैले मन के फफोले । यथैव=जैसे । दुन्दुभी=नगाड़ा । शम्पा=बिजली । बाड़व=अग्नि, ब्राह्मण । अम्बर=आकाश । सौरभेयी-वंश=गायों का कुल । कलत्र=स्त्री । सत्र=घर । गोत्र=पर्वत । यत्र यत्र=जहाँ जहाँ ! व्योम=आकाश । तत तत्र=वहाँ वहाँ । भूमि-धारी=पर्वत । मगधा=इन्द्र । हाला=मद्य, शराब । ब्रीड़ा=लज्जा । स्वेद=पसीना । त्राण=रक्षा । शैल=पर्वत । तस्कर=चोर । नवनीत=मक्खन ।

पाठ ४२—अध्यात्म-चिंतन=ईश्वरीय ज्ञान का मनन । बृहस्पति
=इन्द्र के गुरु । अनुष्ठान=आरम्भ । वृत्रासुर=राक्षस
जिसको इन्द्र ने वज्र बना कर मारा था ।

परिशिष्ट (२)

कवि-परिचय

गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दी-साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म राजापुर जिला बाँदा में सं० १५८१ में हुआ था। कोई कोई विद्वान इनका जन्म १५५४ संवत् में भी मानते हैं। इनकी मृत्यु का संवत् १६८० सर्वमान्य है। गोस्वामी जी राम के अनन्य भक्त थे। इनके रामचरित-मानस का मान योरुप तक के बुद्धिमानों ने किया है। भारत में तो इनकी रामायण घर घर में विराजमान है। इनके रामचरित को पढ़ कर अनेक लोगों ने विमल ज्ञान प्राप्त किया है। इनके रामचरित-मानस ने इनको सदा के लिये अमर कर दिया। इन्होंने और भी १४ ग्रन्थों का निर्माण किया है।

सूरदास

महाकवि सूरदास हिन्दी काव्याकाश के सूर्य माने जाते हैं। इनका जन्म अनुमान से १५४० संवत् और मृत्यु संवत् १६२० माना जाता है। इन्होंने सूरसागर नाम के विशाल ग्रन्थ की रचना की। इनके रचे पदों का गान भक्त लोग बड़े प्रेम से करते हैं। यह हाकवि श्रीभगवान् कृष्ण के परम भक्त थे। ब्रजभाषा के कवियों यह सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू वर्तमान हिन्दी-शैली के आचार्य माने जाते हैं।
सा० सो० द्वि०—१५

इन्होंने अपना तन मन, धन सर्वस्व अर्पण करके हिन्दी अमूल्य सेवा की है। हिन्दी सदा इनकी चिर-ऋणी रहेगी। यह सुप्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज थे। इनका जन्म सन् १८५० ई. में हुआ था। बचपन ही से इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। यह गद्य, पद्य और नाटक के लिखने में सिद्धहस्त थे। इसी कारण यह भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किये गये थे। इन्होंने अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना की थी। ६ जनवरी सन् १८८५ को इनकी मृत्यु हुई।

पं० बालकृष्ण भट्ट

भट्ट जी हिन्दी के अच्छे लेखक थे। आप का जन्म प्रयाग में सं० १६०१ में हुआ था। आप संस्कृत, हिन्दी के विद्वान् थे। अंग्रेजी में इन्होंने इन्ट्रेंस तक शिक्षा प्राप्त की थी। हिन्दी-प्रदीप नाम का मासिक पत्र भी यह बहुत दिन तक निकालते रहे। प्रदीप का उस समय हिन्दी संसार में बड़ा नाम था। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें 'सौ अज्ञान एक सुज्ञान' और नूतन ब्रह्मचारी बहुत उत्तम है। १६७१ में आप का देहान्त हुआ।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनका जन्म संवत् १६२२ में हुआ है। इन्होंने हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत भाषा का अभ्यास बहुत अच्छी तरह किया है। हिन्दी के कवियों में इनकी गणना उच्चकोटि के कवियों में है। अंग्रेजी का भी ज्ञान इनको है। बँगला भी अच्छा जानते हैं। इन्होंने लगभग २५ पुस्तकें लिखी हैं। उनमें प्रियप्रवास, ठेठ हिन्दी कंठा और अधखिला फूल विशेष प्रसिद्ध हैं। अब यह सदा

पनून-गो के पद से पेंशन लेकर हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्रध्यापन का कार्य करते हैं ।

पं० श्रीधर पाठक

पं० श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मण थे । इनका जन्म संवत् १९१६ वि० में हुआ । यह हिन्दी के उत्तम कवि थे । आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करते थे । इन्होंने भारत-गीत, रक्तान्त घासी योगी, श्रान्त पथिक आदि अनेक सुन्दर काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं ।



